श्री चैतन्य महाप्रभु

जीवन और उपदेश

श्री चैतन्य महाप्रभु

जीवन और उपदेश

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

गोसाई पब्लिशर्स
इन्टरनेशनल गौड़ीय वैष्णव सोसाइटी,
१०३, सेवा कुंज, लोई बाजार,
c/o श्री राधा-दामोदर मंदिर, वृन्दावन, मथुरा - २८११२१
दूरवाणी : +91 9880314024 / +91 9901893624
ई-मेल : books@gosai.com • वेबसाइट : www.gosai.com

अनुवाद	मुकुन्द दास कदम्बा देवी दासी स्वामी भक्तिवल्लभ यति
अभिन्यास और आवरण	स्वामी भक्तिवल्लभ यति
वित्तीय योगदान	मुकुन्द दास, कुञ्जबिहारी दास, भक्तप्रिया दासी, थलदीप कृष्ण दास, जनक-ऋषी दास, सुबल दास, गणेश बालकृष्णन

१२५वीं अंग्रेजी प्रकाशन वर्षगांठ की स्मारक संस्करण (२०२१)

ISBN : 979-8-9855372-0-8

मूल्य : ₹२५०

Copyright © 2021, Gosai Publishers
"Gosai" Name & Logo are registered trademarks of
Sri Narasingha Chaitanya Matha Trust, Srirangapatna

विषय सूची

प्राक्कथन 17
परिचय 23

श्री चैतन्य महाप्रभु ***का जीवन*** 34
श्री चैतन्य महाप्रभु ***के उपदेश*** 50

समापन टिप्पणी 75

श्री चैतन्य महाप्रभु

SRIGOURANGA SMARANAMANGALA

OR

CHAITANYA MAHAPRABHU

His Life and Precepts.

BY

SRI KEDAR NATH DUTT

BHAKTIVINOD.

Member of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, retired Member of the Bengal Provincial Civil Service, Editor of "The Sajjanatoshini" late Joint Editor of "The Vishnupriya Patrika," Karjyapati of The Nabadwipa Dhampracharini Sava; Parimarjak Srinamhatta, Author of The Poriade, The Muts of Orrissa, The Bhagabat Speech, Goutam Speech, Vijanagram, Sanyashi, Srikrishna Samhita, Datta Kaustav, Dattavansa mala, Kalyan-Kalpataru, Chaitanya Shikhsamrita, Prempradip, Amnaya Sutram, Nabadwipdham Mahatmya. Tatwa-Sutram, Commentator of Bhagabadgita, Chaitanyopanishat, Ishopanishad, Srichaitanyacharita mrita, Mayavad Satadushani, &c. &c. &c.

Published by K. DUTT, M. A.

Calcutta.

1896.

PREFACE.

In presenting this work to the public, the publisher begs to announce that the author has in a brief compass tried to explain the main features of the **Vaishnava** Philosophy as taught in the School of Chaitanya Maha-prabhu. Although it may appear at the outset to be very abstruse, the reader will attain a clear appreciation if he takes a little pain to study the subject carefully. The author has expressed his wishes to illucidate any portion which may appear to be inexplicit, and the publisher will always be glad to forward the author any reference directed to his address as below.

Pandit SITIKANTHA VACHASPATI whose commentaries have been published is a renowned Sanskrit scholar of Nadia.

181, MANIKTALA STREET,
CALCUTTA, INDIA.
20th August 1896.

K. P. DUTT.

ॐ विष्णुपाद परमहंस श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द नामिने
गौरशक्ति स्वरूपाय रूपानुग वराय ते
वन्दे भक्तिविनोदं श्री गौरशक्ति स्वरूपकम्
भक्तिशास्त्रज्ञ संराजं राधारससुधानिधिम्

ॐ ॐ विष्णुपाद परमहंस ॐ

श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज

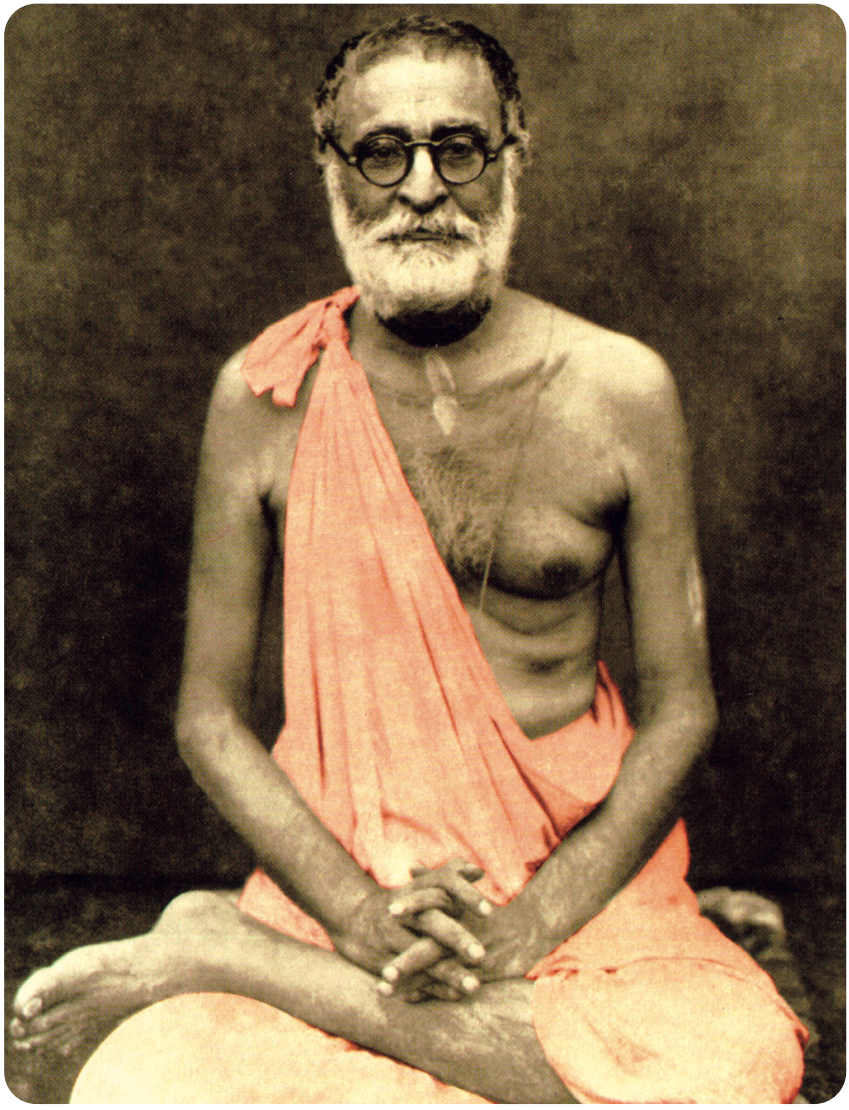

ॐ विष्णुपाद परमहंस

श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद

ॐ विष्णुपाद परमहंस

श्रील ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद

~ समर्पण ~

हमारे पूज्य गुरुदेव के प्रति

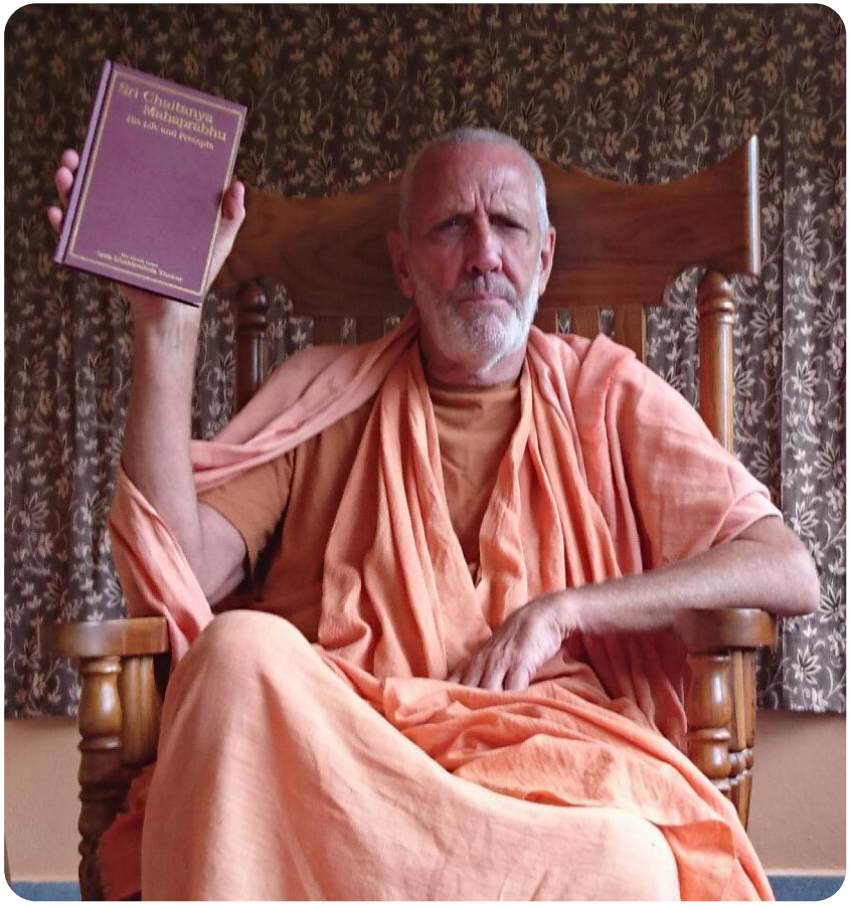

ॐ विष्णुपाद परमहंस

श्रील भक्तिगौरव नरसिंह महाराज

गलत सोच है उनकी,
जो कहे कि वैष्णव मरते हैं।
वैष्णव तो वाणी में अमर हैं!
मरते हैं जीने ये वैष्णव,
और जीते हैं पवित्र जीवन फैलाते!
—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्राक्कथन

स्वामी भक्तिगौरव नरसिंह और स्वामी भक्तिभावन विष्णु द्वारा

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में पश्चिमी विश्व, पराक्रम और प्रभाव की ऊंचाइयों पर पहुंच चुका था। विज्ञान, प्रौद्योगिकी एवं आर्थिक विकास के क्षेत्र में उसकी प्रगति की कोई सीमा ही नहीं थी। विश्व भर में अपने राजकीय सत्ता को बढ़ाकर, उसने एशिया और अफ़्रीका में अपना अधिकार जमाते हुए विशाल साम्राज्यों की स्थापना की, और इसके साथ आयी गुरूर की भावना तथा अपने सभ्यता की अंतर्जात श्रेष्ठता की धारणा पर पूरा विश्वास।

भारत एक अधीन देश हुआ करता था। अपने अंग्रेजी शासकों के लिए वह एक पिछड़ा हुआ, अल्प-विकसित, ग़रीबी से ग्रस्त, और अतीत के अंधविश्वासों से भरा हुआ एक बद्ध देश था, जिसे अपने प्राकृतिक एवं मानव संसाधनों के अलावा देने के लिए ज्यादा कुछ नहीं था। फिर इस देश की प्रजा द्वारा विश्व सभ्यता की प्रगति के लिए योगदान कैसे मुमकिन था?

१८९६ में इस प्रश्न के उत्तर में, 'Calcutta, India' के डाक मोहर वाला एक भूरे रंग का पैकेज कनाडा के मक्-गिल विश्व-विद्यालय में पहुंचा। इस पैकेज में संस्कृत भाषा में एक छोटी पुस्तक थी, 'श्री गौराङ्ग लीला स्मरण मंगल स्तोत्र', जिसमें १०४ श्लोकों में श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन एवं उपदेशों का सारांश था। इस संस्कृत रचना के साथ, अंग्रेजी भाषा में ६३ पृष्ठों की एक पुस्तिका थी, 'श्री चैतन्य महाप्रभू – उनका जीवन और उपदेश', जो अंग्रेजी दुनिया को सोलहवें शताब्दी के कृष्ण-अवतार श्री चैतन्य महाप्रभु का पहला परिचय देती है।

इन दोनों रचनाओं के लेखक थे केदारनाथ दत्ता भक्तिविनोद ठाकुर (१८३८-१९१४), जो गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के संत तथा विद्वान भी थे। हालांकि पश्चिमी विचार व साहित्य के वे स्वयं ही प्रशंसक थे, फिर भी उन्हें विश्वास था कि जब पश्चिम के बुद्धिमान लोग श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों के संपर्क में आएंगे, तब वे उनकी अमूल्यता को अवश्य पहचानेंगे और अपने हृदय की संतुष्टि के लिए उन्हें पूर्ण रूप से स्वीकार भी करेंगे। और इस पुस्तिका में उन्होंने श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन और उपदेशों को इतना सरल और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया है कि सौ साल से अधिक वर्षों के बाद भी पश्चिमी विश्व में सर्वत्र, लोग इसे पढ़कर बहुत आशा एवं संतुष्टि महसूस कर सकते हैं।

श्री कृष्ण के प्रति "दिव्य प्रेम" ही श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का सारांश है। प्रेम का यह सिद्धांत, जिसमें श्री कृष्ण अपने भक्तों के साथ परस्पर प्रेम के संबंध में सम्पूर्ण रूप से जुड़े हुए हैं, वह इतना मनमोहक एवं आशाजनक है कि कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति उसका विरोध नहीं कर सकता। आखिरकार, विश्व में प्रेम ही सबसे शक्तिशाली बल है, और जब यह भगवत्-प्रेम के रूप में अपनी पराकाष्ठा पर पहुंचता है, तब समस्त मानव जाती शांति तथा सामंजस्य में खुशी से रह सकती है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर की यह ऐसी अनमोल तथा सौभाग्य-दायक भेंट थी जो वे पाश्चात्य विश्व के लिए भेज रहे थे।

अपने किताब को डाक द्वारा मक्-गिल विश्वविद्यालय भेजने के कुछ वर्षों पहले श्रील भक्तिविनोद ठाकुर को एक दिव्य दर्शन प्राप्त होता है जिसमें वे पश्चिम बंगाल में गंगा के तट पर, श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म-स्थान मायापुर में एक भव्य आध्यात्मिक नगरी को प्रकट होते देखते हैं। उस दर्शन में वे पूर्व तथा पश्चिम दोनो जगहों से, दुनिया के सबसे तकनीकी तौर पर प्रगतिशील एवं धनवान देशों से, हज़ारों लोगों को श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षा को स्वीकार करते हुए देखते हैं। ४०० वर्ष पुरानी, स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु की भविष्यवाणी जिसमें वे कहते हैं कि उनके दिव्य प्रेम की भेंट दुनिया में प्रत्येक नगर एवं ग्राम में प्रचारित होगी, इस भविष्यवाणी को श्रील भक्तिविनोद ठाकुर परिपूर्ण होते हुए देखते हैं।

इस दृश्य से प्रेरित होकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों को भारत के बाहर प्रचारित करने के कार्य को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना देते हैं। समंदर पार, भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति से अपरिचित लोगों के लिए एक छोटे से पुस्तक को भेजना, अवश्य सीधा व साहसी कार्य होकर भी केवल एक छोटा और लगभग नगण्य कार्य था। परन्तु भगवान के लिए दिव्य प्रेम के आन्दोलन को आज जब हम सचमुच बढ़ते हुए देखते हैं, तो हम अतीत में झांक कर इस गहरी श्रद्धा के अद्भुत पल की तथा इस प्रेरणा की शुरुआत की सराहना अवश्य कर सकते हैं।

यह जानते हुए कि आगामी पीढ़ियों को दिव्य प्रेम का परम सौभाग्य प्राप्त होने वाला है, भक्तिविनोद ठाकुर ने श्री चैतन्य महाप्रभु की उदात्त शिक्षा की ओर सब जगह से लोगों को आकर्षित करने के लिए, न केवल अपनी मातृ-भाषा बंगाली में बल्कि संस्कृत एवं अंग्रेजी में भी, सौ से अधिक किताबों सहित अनेक गीत एवं निबन्धों की रचना की। उनके उर्वर कलम से प्रवाहित किताबें एवं गीत ही पुन:प्रवर्तित गौड़ीय वैष्णव आंदोलन के मूलाधार बने, जिसके अनुयायी अब दुनिया के सभी देशों में पाए जाते हैं।

हमें बहुत प्रसन्नता है कि समस्त विश्व के लिए भक्तिविनोद ठाकुर के इस अतुलनीय भेंट, "श्री चैतन्य महाप्रभु – जीवन और उपदेश" को हम फिर से प्रकाशित कर रहे हैं। इस संपादन से श्री चैतन्य महाप्रभु के उत्कृष्ट उपदेशों को समझने के लिए हाल ही में आए लोग बहुत आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करेंगे, और जिन लोगों को ये उपदेश सुपरिचित हैं, वे यह जानकर खुश होंगे कि भक्तिविनोद ठाकुर के विचारों तथा उनकी रचनाओं को अगले सहस्त्राब्दी में आगे बढ़ाया जा रहा है।

—स्वामी भक्तिगौरव नरसिंह महाराज
२००१, गौराब्द ५१५

* * *

महान ग्रंथ श्रीमद भगवद्गीता के चौथे अध्याय में भगवान कृष्ण हमें बताते है की, जब आवश्यकता होती है, तो वे धर्म के सिद्धांतों को पुन:स्थापित करने के लिए इस दुनिया में अवतरित होते है। कभी-कभी भगवान व्यक्तिगत रुप मे प्रकट होते है, जैसे हमारे हृदय में परमात्मा के रुप में चैतन्य महाप्रभु, अन्यथा वे एक विशेष सहयोगी या शुद्ध वैष्णव को भक्ति के पूर्ण सिद्धांत के साथ भेजते है। सामान्यत: हम इन स्वयंसिद्ध महान व्यक्तियों मे से एक को अपने दीक्षा गुरु के रुप में स्वीकार करते है, जबकि हम इन महान आत्माओं में से किसी को भी अपने आध्यात्मिक गुरु या शिक्षा गुरु के रुप में स्वीकार कर सकते है।

हमारे महान उपदेशक श्रील भक्तिविनोद ठाकुर, जिन्हें गौड़ीय वैष्णव परंपरा के आधुनिक पुनरुत्थान का अग्रदूत माना जाता है, उन्हें एक दर्शन प्राप्त हुआ जिसमें वे चैतन्य महाप्रभु की भविष्यवाणी को पूरा होते देखते हैं — "पृथ्वीते आचे यता नगरादी ग्राम, सर्वत्र प्रचार होइबे मोरा नाम," पृथ्वी के हर शहर और गांव में मेरे (हरि) नाम का प्रचार किया जाएगा।

भक्तिविनोद ने यह दर्शन भारत में मायापुर, पश्चिम बंगाल, में होते देखा और १८९६ में कॅनाडा के मॉन्ट्रियल मॅकगिल विश्वविद्यालय में "Sri Caitanya Mahaprabhu – His Life and Precepts" इस छोटी पुस्तक को भेजकर इसके निष्पादन का उद्घाटन किया। वर्तमान के इस पुन:प्रकाशन से यह पुस्तक अपने मूल प्रकाशन की १२५ वी वर्षगांठ को चिह्नित करता है, और पश्चिमी दुनिया तक पहुंचने के लिए अंग्रेजी में पहले गौड़ीय वैष्णव साहित्य के रुप में इसकी प्रतिष्ठा को इस प्रकाशन द्वारा मनाया जा रहा है।

श्री चैतन्य महाप्रभु की यह भविष्यवाणी, जिसकी पूर्ति का दिव्य-दर्शन १९वीं शताब्दी में श्रील भक्तिविनोद ठाकुर को प्राप्त हुई थी, पश्चिमी देशों में प्रचार करने की दृष्टि से श्रील भक्तिसिद्धांत सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद द्वारा भारत में इसकी संगठनात्मक नींव रखी गई।

इस दिव्य दृष्टि क पूर्णता अंतत: २०वी शताब्दी में श्रील ए. सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के प्रचार प्रयासों के माध्यम से साकार कि गयी। जिनका 'हरे कृष्णा' आंदोलन दुनिया भर के सभी देशों में फैला। ईश्वरीय विधान से भक्तिवेदान्त स्वामी भी इस दुनिया में १८९६ में आविर्भावित हुए।

जब श्रील प्रभुपाद ने १९७३ में श्रील श्रीधर महाराज को गौर पूर्णिमा पर पश्चिम बंगाल में मायापुर के इस्कॉन चंद्रोद्य मंदिर के प्रतिष्ठापन के दौरान बोलने के लिए कहा, तब श्रीधर महाराज ने कहा:

> "हरे कृष्ण। तो हमारे स्वामी महाराज ने एक चमत्कार किया! भक्तिविनोद ठाकुर ने जिसकी कल्पना की थी और प्रभुपाद (भक्तिसिद्धांत सरस्वती) ने अपनी अवधारणा के अनुसार अपने अंतिम दिनों में जिसे कार्यान्वित करने का प्रयास किया, यह भविष्यवाणी स्वामी महाराज (ए. सी. भक्तिवेदान्त प्रभुपाद) के माध्यम से पूर्ण हुआ। हम खुश हैं, हम प्रसन्न है, हमे स्वामी महाराज पर गर्व है।"

महामुनि श्री व्यासदेव द्वारा रचित महान ग्रंथ श्रीमद् भागवतम्, जो अंतिम वैदिक ग्रंथ है, उसके अंतिम श्लोक में बिना किसी अनिश्चित शब्दों के नाम संकीर्तन की सिफारिश करता है – भगवान के पवित्र नामों का सामूहिक जप जो कलियुग में भगवान की अनुभूति का सबसे प्रभावी तरीका है। यह कोई और नहीं बल्कि चैतन्य महाप्रभु थे जिन्होंने १५वीं शताब्दी में इस भव्य संकीर्तन यज्ञ का उद्घाटन किया और 'हरे कृष्ण' महामंत्र — हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।। के सामूहिक मंत्रोच्चार को लोकप्रिय बनाया।

श्री चैतन्य महाप्रभु के एकमात्र लिखित निर्देश शिक्षाष्टकम में उन्होंने हमें आठ श्लोक दिए हैं, जो हरिनाम के जप और इसके अद्वितीय लाभों के सबसे सारगर्भित एवं पूर्ण उपदेश हैं। चैतन्य महाप्रभु ने आगे कहा है कि वह चाहते हैं की हम सभी भगवान के बुलावे का स्वीकार करें और हर परिस्थिति में सर्वव्यापी रूप से भगवान के संदेश का प्रचार करें - "यारे देखो तारे कह कृष्ण उपदेश, आमार आज्ञाय गुरु होइया तारो एइ देश।"

श्री चैतन्य महाप्रभु की सबसे उल्लेखनीय चर्चाओं में है — वाराणसी में सनातन गोस्वामी को भक्ति मार्ग के मूलभूत सिद्धांतों के बारे में निर्देश, प्रयाग में रुप गोस्वामी को भक्तियोग की प्रक्रिया के बारे में निर्देश, गोदावरी नदी के तट पर रामानंद राय के साथ ऐतिहासिक संवाद जो वैदिक आध्यात्मिक विचार की सत्ता मिमांसा पर प्रकाश डालते हैं, जो वर्णाश्रम (शुरुआती स्थिति) से शुरु होकर भक्ति के उच्चतम स्थिति तक, श्री चैतन्य महाप्रभु के गोपनीय और गूढ़ पहचान को प्रकट करता है। शंकर सम्प्रदाय के प्रसिद्ध शिक्षक सार्वभौम भट्टाचार्य और प्रकाशानंद सरस्वती के साथ उनके संवाद भी समान रुप से महत्वपूर्ण हैं।

यह छोटी पुस्तक श्री चैतन्य महाप्रभु के परम दिव्य जीवन और उनके मूल उपदेशों की एक झलक है, जो उनके प्रत्यक्ष निर्देशों और उनके अनुयायियों की शिक्षाओं जो कलियुग के लोगों के लाभ के लिए इन निर्देशों का विस्तृत रुप से वर्णन करती है, इन दोनों पर आधारित है। हम अत्यधिक आशावादी हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आंदोलन के प्रचार के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्मारक के रुप में इस पुस्तक को अच्छी तरह से प्राप्त किया जाना जारी रहेगा, जैसा की पिछले एक सवा शताब्दी में किया गया है, और हमें उम्मीद है कि भविष्य में इस पुस्तक के कई और संस्करण भी प्रकाशित किए जाएंगे।

—स्वामी भक्तिभावन विष्णु महाराज
नवंबर १९, कार्तिक मास, २०२१
गौराब्द ५३५

परिचय

केदारनाथ दत्ता, जो आगे जाकर भक्तिविनोद ठाकुर के नाम से प्रख्यात हुए, उनका जन्म २ सितंबर १८३८ में बंगाल के नदिया जिले के एक समृद्ध गांव उला में हुआ। उनका परिवार एक कुलीन परिवार था, जो गोविंदपुर (कलकत्ता में फोर्ट विलियम्स का वर्तमान स्थल) के मालिक थे। उनका बचपन उनके नाना के घर बीता। चौदह वर्ष की आयु में उन्होंने उस समय के एक साहित्यिक दिग्गज, हिंदु इंटेलिजेंसर के संपादक, काशी प्रसाद घोष के अधीन विद्याभ्यास करना शुरु किया। हिंदु इंटेलिजेंसर अखबार अपने साहित्यिक मनमोहकता के लिए प्रसिद्ध था, और संपादक कई लेखकों को अपनी ओर आकर्षित करते, जो उनसे अंग्रेजी भाषा का सही उपयोग सीखने के लिए उत्सुक थे। कुछ हि समय में केदारनाथ, इंटेलिजेंसर तथा उस समय के एक अन्य समाचार पत्र, लिटररी गज़ेट, दोनों में लेखों का योगदान देने लगे थे। जब वे अठारह वर्ष के थे, तब तक एक महाकाव्य, द पोरियाड के दो पुस्तकों की रचना वे कर चुके थे, जिसे वे बारह खंडो में प्रस्तुत करना चाहते थे। इस रचना के प्रथम पुस्तक को लंडन के ब्रिटिश संग्रहालय में पाया जा सकता है।

काशी प्रसाद के साथ रहने के दौरान, केदारनाथ शास्त्रार्थ में अपनी महान प्रतिभा के लिए प्रसिद्ध हुए और उस समय के प्रसिद्ध व्यक्तित्वों जैसे कि देवेंद्रनाथ टैगोर और अन्यों के साथ वे आध्यात्मिक तथा साहित्यिक विचारों का आदान प्रदान करते। अपनी इन चर्चाओं में, वे सभी बहुत मूल्य पाते थे।

१८६० में उडीसा के सभी प्रमुख मठों का दौरा करने के बाद, केदारनाथ ने *The Maths of Orissa* नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें उन्होंने एक भूमि के टुकडे का उल्लेख किया है, जिसे उनके पूर्वजों द्वारा उन्हें सौंपा गया था : "कटक देश में एक छोटेसे गांव, छोटीमंगलपुर का मैं मालिक हूं। उस गांव में एक धर्मशाला है, जिसे मेरे पुर्ववर्तियों द्वारा एक किराया मुक्त भूमि सौंपी गई थी। संस्था के प्रमुख ने ऐसे लोगों की खातिर करना पुरी तरह से बंद कर दिया, जो बरसात के रातों में आश्रय लेने के लिए उनका दरवाज़ा खटखटाते थे। यह मेरी सुचना में आया; और मैंने सदन के अध्यक्ष को गंभीर धमकी दी और उनपर एक चेतावनी प्रशासित की, कि अगर भविष्य में आतिथ्य संबंधी शिकायते मेरे पास आई तो उनकी जमीनों पर फिर से कब्जा कर लिया जाएगा।"

हालांकि केदारनाथ ने एक विद्यालय के अध्यापक के तौर पर अपना जीवन शुरु किया, लेकिन १८६६ तक उन्होंने सरकार में डिप्टी मजिस्ट्रेट का पद स्वीकार कर लिया था और उन्हें दिनाजपुर का डिप्टी मजिस्ट्रेट नियुक्त किया गया। दिनाजपुर में ही केदारनाथ सबसे पहले वैष्णव मत के संपर्क में आए, जो राय साहब कमला लोचन के संरक्षण में प्रचलित था। दिनाजपुर के यह महान जमीनदार, श्री चैतन्य महाप्रभु के निष्ठावान अनुयायी रामानंद वासु के वंशज थे। वहां के अनेक वैष्णवों से जान-पहचान करने के बाद केदारनाथ ने चैतन्य चरितामृत की प्रतियां तथा श्रीमद्भागवत के एक बंगाली अनुवाद को प्राप्त किया।

चैतन्य चरितामृत को पहली बार पढ़ने के बाद केदारनाथ ने श्री चैतन्य महाप्रभु पर एक बहुत ऊंचा अभिप्राय प्राप्त किया और इस प्रकार उन्होंने महाप्रभु कि शिक्षाओं का गंभीरता से अध्ययन करना शुरु किया। ब्रह्मो-वाद, ईसाई धर्म और ईस्लाम जैसे अन्य धर्मों के साहित्य का अध्ययन करके उन्होंने उन धर्मों के संदर्भ में वैष्णववाद का तुलनात्मक अध्ययन किया, लेकिन वैष्णव मत में ही उन्होंने अपने विचारों की संपूर्ण परिणति को पाया।

केदारनाथ अब पूर्ण रिती से वैष्णव बन गए। वे भागवतम में पाए गए सिद्धांतों में इतने दृढ़ हो गए की उन्होंने १८६९ में इस विषय पर एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया, जिससे हजारो लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ और बाद में वह व्याख्यान भागवत (The Bhagavat) नाम की छोटी पुस्तिका के रुप में प्रकाशित हुआ।

कुछ वर्षों बाद, केदारनाथ का चंपारण नगर में तबादला हुआ। वहां एक बरगद के पेड़ में एक ब्रह्म-दैत्य (एक प्रकार का प्रेतात्मा) निवास करता था जिसकी पूजा कुछ तुच्छ लोग करते थे। एक दिन एक प्रसिद्ध विद्वान के पिता भिक्षा के लिए केदारनाथ के पास आए, और तुरंत ही केदारनाथ ने उन्हें प्रेतात्मा के निवास वाले बरगद के पेड़ की छाया में भागवतम पढ़ने के लिए नियुक्त किया। एक महिने के बाद जब भागवतम का पठन पुरा हुआ, वह बरगद का पेड़ जमीन पर गिर पड़ा , जिससे वह प्रेतात्मा हमेशा के लिए चला गया। प्रेतात्मा की पूजा करने वाले कुछ बेईमान लोगोंको छोड़कर हर कोई इस कृत्य के लिए आभारी था।

चंपारण मे कुछ महिनों तक रहने के बाद केदारनाथ का जगन्नाथ पुरी में तबादला हुआ और वे परिवार सहित वहां पर गए। वे अपनी दो पसंदीदा पुस्तके, श्री चैतन्य चरितामृत और श्रीमद्भागवतम भी अपने साथ लाए। पुरी में तैनात किए जाने पर वे बहुत खुश थे, जहां पर उनके आराध्य भगवान, श्री चैतन्यदेव ने कई वर्षों तक निवास किया था। सरकारी कमिश्नर उन्हें अपने विभाग में पाकर बहुत प्रसन्न हुए, और सरकार की ओर से उन्हें जगन्नाथ मंदिर के मामलों को संभालने के लिए कहा। केदारनाथ के प्रयासों के कारण बहुत से भ्रष्टाचारों को रोका गया और भगवान के भोग अर्पण सेवा को अत्यंत रुप से समयपाबंदित किया गया।

केदारनाथ को विशेष रुप से बिसिकीसेन नाम का एक व्यक्ती जिसने स्वयं को महाविष्णु का अवतार घोषित किया था, उसके द्वारा सरकार के खिलाफ हो रहे विद्रोह को कुचलने का काम सौंपा गया। अपनी जांच के दौरान, केदारनाथ ने उसे एक धोखेबाज़ और अपराधी पाया और उस पर सरकारी आदेशों का उल्लंघन करने का आरोप लगाया।

सुनवाई के बाद उस व्यक्ति को डेढ़ साल कारावास की सजा सुनाई गयी, लेकीन जेल में थोडे समय के बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। यह व्यक्ति अप्राकृतिक शक्तियों से संपन्न था, लेकीन चूंकि वह शक्तियां आध्यात्मिक साधना का परिणाम नहीं था, इसलिए उसे केदारनाथ के हवाले होना पड़ा। आम लोग बिसिकीसेन से भयभीत थे इसलिए सभी ने केदारनाथ को चेतावनी दी की वे योगी द्वारा दिए जाने वाले गंभीर परिणामों को देखते हुए न्याय के लिए भी उसे धमकी ना दे। यद्यपि केदारनाथ दिखावटी व्यक्ति नहीं थे इसलिए लोग उनके वास्तविक गुणों और आध्यात्मिक शक्ति को जान नहीं सकते थे, लेकिन उन्होंने पाखंडी की अधर्मी शक्ति को आसानी से काट दिया। बिसिकीसेन के पतन के साथ एक अन्य गांव में बलराम नाम के एक ढोंगी का उदय हुआ, और भगवान के नाम पर अन्य तथाकथित ढोंगी अवतार भी थे, लेकिन उनकी योजनाएं भी इसी तरह विफल की गयी।

जगन्नाथ पुरी में रहते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु के प्रति केदारनाथ की भक्ति बहुत तीव्र हो गई। श्रीधर स्वामी द्वारा रचित भागवतम् के अध्ययन में उनकी सहायता के लिए उन्होंने गोपीनाथ नाम के एक पंडित को नियुक्त किया। हरिहरदास और मार्कंडेय महापात्र, जिन्होंने नवद्वीप और बनारस (विद्वत्ता के दो महान केंद्र) में न्याय (तर्क) और वेदांत का अध्ययन किया था, वे दोनों उनके साथ भागवतम का अध्ययन करने लगे।

कलकत्ता में स्कूल के दिनों में माननीय ईश्वर चंद्र विद्यासागर, द्विजेंद्रनाथ टैगोर और अन्य लोगों के अधीन संस्कृत व्याकरण और साहित्य सीखने के बाद, केदारनाथ ने भाषा का अध्ययन जारी रखा। श्रीमद्भागवतम जैसे अनेक वैष्णव साहित्य मूल रुप से संस्कृत में रचे गए हैं और उनके इस भाषा के ज्ञान ने उन्हें इन महान ग्रंथों के तात्पर्य में प्रवेश करने योग्य बनाया। भागवतम के बाद, उन्होंने जीव गोस्वामी और रुप गोस्वामी के ग्रंथों का अध्ययन किया, जो उन्होंने पुरी के राजा के पुस्तकालय से प्राप्त किए थे।

अब उन्होंने वैष्णव धर्म के दर्शन में निपुणता हासील कर ली थी और संस्कृत में दत्त-कौस्तुभ नामक अपनी एक पुस्तक भी पूरी की। उन्होंने संस्कृत में श्रीकृष्ण संहिता के नाम से एक और पुस्तक लिखना शुरु किया, जो आगे चलकर सुप्रसिद्ध हुई। इस अवधि में उन्होंने और भी कई पुस्तके लिखीं और भागवतम पर व्याख्यान देना भी प्रारंभ किया। वे पांच साल तक पुरी में रहे, और इस दौरान सभी मुख्य वैष्णव, श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों में उनकी प्रवीणता और उनके प्रति उनकी भक्ति को देखकर प्रभावित हुए।

केदारनाथ का पुरी के बाद बंगाल के विभिन्न स्थानों पर स्थानांतरण हुआ, और १८७८ में वे जेसोर जिले के नरेल में तैनात हुए। यहां वे वैष्णव मजिस्ट्रेट के रुप में लोकप्रिय हो गए, और कई कीर्तन समूह उनके मनोरंजन के लिए अपने कीर्तन सुनाने के लिए आते थे। यहीं से उन्होंने १८८९ में श्रीकृष्ण संहिता का प्रकाशन किया और जल्द ही पूरे भारत में इसकी सराहना हुई। लंडन में भारतीय कार्यालय के सर रेहनोल्ड रेस्ट ने एक राय व्यक्त की जो केदारनाथ के साहित्य का परिचय देती है, "कृष्ण के चरित्र तथा उनकी भक्ति को, अब तक की प्रथागत धारणा से अधिक उदात्त एवं पारलौकिक दृष्टी से प्रस्तुत करके, आपने अपने सह-धर्मियों के लिए एक अत्यावश्यक सेवा प्रदान की है।"

नरैल में रहते हुए, केदारनाथ ने श्री बीपिन विहारी गोस्वामी से दीक्षा लिया और उन्होंने सभी वैष्णव आचरण को अपने सख्त रुप में अपनाया। उन्होंने अब सभी शिक्षित लोगों में, चैतन्य महाप्रभू द्वारा स्थापित गौड़ीय वैष्णव धर्म के सिद्धांतों की रुची पैदा करने का संकल्प किया। इसे ध्यान में रखते हुए, उन्होंने सज्जन तोशनी (शुद्ध भक्तों की संतुष्टी) नामक एक बंगाली मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया, जो पहला वैष्णव समाचार पत्र था।

तीन साल तक नरैल में रहने के बाद, उन्होंने विभिन्न पवित्र स्थोनों की तीर्थयात्रा की। वृंदावन में कंझार नाम के डकैतों के एक गिरोह से उनका सामना हुआ। इन शक्तिशाली डाकुओं ने पवित्र शहर के आसपास की सड़कों में आतंक फैला रखा

था, जहां पर निर्दोष तीर्थयात्रियों पर हमला करने का चलन बन गया था। केदारनाथ ने यह खबर सरकार तक पहुंचाई और कई महिनों के संघर्ष के बाद उन डाकुंओं को हमेशा के लिए वृंदावन से हटा दिया।

इस समय से, उन्होंने चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आंदोलन के सभी उपदेशों की व्याख्या करते हुए बड़े पैमाने पर, बड़ी जन-सभाओं में प्रचार करना शुरू किया। उनकी प्रशस्त शिक्षा और भक्ति के सम्मान में, वृंदावन के गोस्वामियों ने केदारनाथ को "भक्तिविनोद" नाम से सम्मानित किया।

वृंदावन में वे गौड़ीय वैष्णवों के प्रमुख श्रील जगन्नाथ बाबाजी से मिले, जो बाद में भक्तिविनोद ठाकुर के धार्मिक मार्गदर्शक बनकर उनके प्रचार में अपनी सहायता प्रदान करते हैं। इसी समय पर भक्तिविनोद ठाकुर ने वैष्णव धर्म के प्रचार को गंभीरता से लेने का फैसला किया और उन्होंने वैष्णव डिपॉजिटरी (वैष्णव भंडार) नाम से एक प्रिंटीग प्रेस की स्थापना की।

जब भगवान ने स्वप्न में उन्हें श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्मस्थान, श्री नवद्विप धाम की सेवा करने का आदेश दिया, तो भक्तिविनोद ठाकुर ने कृष्णनगर में तबादले के लिए आवेदन किया, जो कि नवद्विप से थोड़ी ही दुरी पर है। १८८७ के दिसंबर में उनके स्थानांतरण के अनुरोध को स्वीकार कर लिया गया।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपने परमप्रिय भगवान श्री चैतन्य महाप्रभु के सटीक जन्म स्थल की खोज की आशा के साथ, कृष्णनगर जाने के लिए बहुत खुश थे। पुरी में रहते हुए उन्होंने दो किताबें प्राप्त की, जो उनकी पुरातात्विक जांच में उपयोगी थी। उनमें से एक नरहरी चक्रवर्ती का भक्तिरत्नाकर और दूसरा परमानंद दास द्वारा रचित पुस्तक था।

एक रात, नवद्विप में अपने निवास की छत पर, चैतन्य महप्रभु के जन्मस्थान के विषय पर अपने गहन ध्यान के दौरान, उन्हें उत्तर-पूर्व की ओर एक चमकदार इमारत का दर्शन प्राप्त हुआ।

अगली सुबह वे अपने दर्शन में आए स्थान के पास गए। अपनी जांच के दौरान उन्हें एक ऐसे स्थान के बारे में जानकारी मिली जो कुछ स्थानीय निवासियों द्वारा चैतन्य महाप्रभु के वास्तविक जन्म स्थल के रुप में पूजा जाता था। वहां के निवासियों ने तुलसी के पौधों से ढके एक बड़े टीले की ओर इशारा किया और उन्हें सुचित किया कि यह उस घर का वास्तविक स्थान था जहां श्री चैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए थे। अंत में अपने प्रयास में सफल होने पर, वे अत्यंत हर्षित हुए। उसी वर्ष श्रील भक्तिविनोद ने नवद्विप के परिधि में हर जगह की महिमा में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक नवद्विप धाम महात्म्य की रचना की और उसका प्रकाशन किया।

१८९४ में भक्तिविनोद ठाकुर ने श्री नवद्वीप धाम प्रचारिणी सभा की स्थापना की, जिसका अध्यक्ष त्रिपुरा के शासक राजकुमार को बनाया गया। सभा का उद्देश्य था, मंदिर के उचित देखभाल एवं वहां भगवान की सेवा की व्यवस्था करना। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर इस परियोजना के लिए इतने समर्पित थे कि यदि आवश्यक हो, तो वे स्वयं ही घर-घर जाकर योगदान के लिए याचना करने को तैयार थे। अमृत बाज़ार पत्रिका ने इस अवसर को इस प्रकार प्रस्तुत किया :

“बाबु केदारनाथ दत्ता, प्रतिष्ठित डिप्टी मेजिस्ट्रेट, जो अभी अभी अपने सरकारी पद से सेवानिवृत्त हुए हैं, वे इस सभा के सबसे सक्रिय सदस्यों में से एक हैं। दरअसल, बाबु केदारनाथ दत्ता को कलकत्ता और अन्य जगहों से सभा की सदस्यता बढ़ाने के लिए समिती द्वारा प्रतिनियुक्त किया गया है और उन्होंने संकल्प किया है कि यदि आवश्यकता रही तो इस नेक उद्देश्य के लिए वे घर-घर जाकर प्रत्येक हिंदु सज्जन से एक रुपये के लिए भी याचना करेंगे। इसलिए यदि बाबु केदारनाथ दत्ता अपने इस संकल्प पर डटे रहकर हाथ में झोला लिए घर-घर घूमते हैं, तो हमें आशा है कि जिस किसी भी हिन्दू सज्जन का घर बाबु केदारनाथ जैसे महान भक्त की उपस्थिती से सम्मानित होगा, वे अपनी क्षमता के अनुसार उन्हें चंदा दिए बगैर वहां से रवाना नहीं करेंगे, चाहे चंदा कितना भी कम क्यों न हो।”

अपने जीवनकाल में भक्तिविनोद ठाकुर ने संस्कृत, बंगाली, हिंदी, उर्दू और अंग्रेजी में १०० से अधिक पुस्तकों का लेखन, संपादन और प्रकाशन किया। उनके कुछ महत्वपुर्ण रचनाओं में *The Maths of Orissa, The Bhagavata* (एक व्याख्यान), श्री कृष्ण संहिता, चैतन्य शिक्षामृत, नवद्विप धाम महात्म्य, श्री भागवत अर्क मरिचिमाला और भगवद् गीता, चैतन्योपनिषद, ईशोपनिषद तथा श्री चैतन्य चरितामृत पर टिप्पणियां शामिल हैं।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर के समय से पूर्व, वैष्णवधर्म के सिद्धांत भारत के बाहर अज्ञात थे। १८९६ में, भक्तिविनोद ठाकुर ने श्री-गौरांग-लीला-स्मरण-मंगल-स्तोत्रम की एक कापी पश्चिम भेजी, जो कॅनाडा के McGill University के पुस्तकालय में पहुंचि। उन्हीं वर्षों के दौरान जब एमर्सन और थोरो वैदिक ज्ञान के लिए इच्छुक थें, लंडन के जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी (जिसमें भक्तिविनोद ठाकुर सदस्य थें) ने निम्नलिखित आलोचना की:

“श्री-गौरांग-लीला-स्मरण-मंगल-स्तोत्रम के शीर्षक में, महान वैष्णव केदारनाथ भक्तिविनोद, एम.आर.ए.एस., ने श्री चैतन्य के जीवन और उपदेशों पर संस्कृत में एक काव्य प्रकाशित किया है। इसके साथ एक टिप्पणी है, जिसे भी संस्कृत में रचा गया है, जिसमें इस विषय को और अधिक स्पष्ट किया गया है, और अंग्रेजी में *Sri Chaitanya Mahaprabhu – His Life and Precepts*, नामक त्रहसठ पन्नों का परिचय भी है, जिसमें चैतन्य द्वारा सिखाए गए सिद्धांतों को लगभग पुर्ण रुप से प्रस्तुत किया गया है। श्री चैतन्य के दार्शनिक विचार के अलावा इसमें और अधिक विशेष रुप से शंकर और अद्वैत वेदांतियों के खंडन में विरोधी विचार को विस्तार से समझाया गया है। यह छोटी सी पुस्तक इस असाधारण सुधारक के बारे में हमारे ज्ञान में वृद्धि करेगी, और इसके लिए हम भक्तिविनोद ठाकुर के प्रति अपना आभार व्यक्त करते हैं, कि उन्होंने हमें इसे बंगाली में ना देकर, अंग्रेजी और संस्कृत में दिया। यदि यह पुस्तक बंगाली में होती तो भारत के धार्मिक जीवन का अध्ययन करने वाले यूरोपीय छात्रों के लिए निश्चित रुप से यह दुर्लभ बनी रहती।

हरिनाम का प्रचार करने की सेवा भी जोरोंपर थी, और इसका तेजी से विश्व के कोने कोने तक विस्तार हुआ। श्री-गौरांग-लीला-स्मरण-मंगल-स्तोत्रम और साथ में अंग्रेजी में प्रस्तावना, जिसमें श्री चैतन्य का जीवन और उपदेश शामिल हैं, यह भगवान श्री चैतन्य के जन्मस्थान की खोज के तुरंत बाद भक्तिविनोद की कलम द्वारा व्यक्त हुए और दोनों गोलार्धों के सभी शिक्षा संस्थानों में इन साहित्यों ने अपना स्थान पाया।

जितना भगवान श्री चैतन्य और भगवान कृष्ण के नामों का प्रचार हुआ उतना भक्तिविनोद ठाकुर प्रसन्नचित्त हुए। इसके बाद उन्होंने श्री ब्रह्म संहिता, श्री कृष्ण संहिता, श्री कृष्ण कर्णामृत, श्री हरीनाम चिंतामणि और भजन रहस्य आदि की टिप्पणियां रची। उन्होंने टिप्पणी सहित श्रीमद्भागवतर्क मरीचि माला का संपादन भी किया, जिसमें वैष्णव दर्शन से संबधित श्रीमद्भागवतम के लगभग सभी मुख्य श्लोक शामिल हैं।

भक्तिविनोद ठाकुर की कलम कभी नहीं थकती, और उन्होंने कई अन्य वैष्णव दार्शनिक रचनाओं का निर्माण किया। सरकरी काम पुरा होने के बाद वे देर रात लिखना शुरु करते थे और रात को एक या दो बजे तक जागकर कीर्तन और साहित्य की रचना करते। उनकी अधिकांश रचनाएं सज्जन तोशनी पत्रिका में छपीं। लिखने में तथा बंगाल के कई जिलों में हरिनाम के प्रचार के लिए वे समान रूप से प्रवृत्त रहते। गावों में उनके व्यक्तिगत उपस्थिति का लोगों पर अद्भुत प्रभाव पड़ता नदिया के केंद्र की देखभाल के लिए उन्होंने श्री गोद्रुम द्वीप में एक घर बनाया और उसका नाम श्री स्वानंद-सुखद-कुंज रखा। यहां इस निवास में हरिनाम का प्रचार जोरों पर जारी रहता।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में वे पुरी गए और वहां समुद्र तट पर एक घर बनाया। बहुत से नेक लोग उनसे आशीर्वाद मांगते और आसानी से प्राप्त कर लेते। हालांकि वे एक त्यागी का जीवन व्यतीत कर रहें थे, फिर भी सभी तरह के लोग लगातार उनसे मिलने के लिए आते जिन्हें वे टाल नहीं पाते थे। उन सभी ने भरपूर आध्यात्मिक

ज्ञान, उपदेश और अनुग्रह प्राप्त किए। १९१० में वे संसार से पूर्ण रुप से विरत हो गए और समाधी की पूर्ण अवस्था यानी की भगवान की नित्य-लीला पर ध्यान केंद्रित करते हुए पूर्ण रूप से उनमें निमग्न हो गए। श्री गदाधर पंडित के अंतर्धान होने के वार्षिक तिथी के दिन, १९१४ में भक्तिविनोद ठाकुर गोलोक के परमानन्दमय धाम के लिए तिरोहित हुए।

हरिदास ठाकुर की समाधि स्थल पर भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा १८७१ में लिखे गए एक पद्य द्वारा हम यह सीख सकते हैं कि कैसे एक वैष्णव अपने प्रस्थान के बाद भी इस दुनिया में प्रभावशाली बने रहते हैं —

गलत सोच है उनकी,
जो कहे कि वैष्णव मरते हैं।
वैष्णव तो वाणी में अमर हैं!
मरते हैं जीने ये वैष्णव,
और जीते हैं पवित्र जीवन फैलाते!

श्री चैतन्य महाप्रभु
का जीवन

इस छोटी सी पुस्तक का उद्देश्य चैतन्य महाप्रभु के पवित्र जीवन और उनके उपदेशों को शिक्षित और धार्मिक लोगों के ध्यान में लाना है। इन विषयों पर चर्चा करने वाली अधिकांश पुस्तके अब तक बंगाली भाषा में छपी हैं। इसलिए, श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन और उनके उपदेशों की जानकारी बहुत कम बंगाल की सीमाओं के बाहर गई। इसलिए, पूरे भारत में प्रसारण के लिए संस्कृत भाषा में एक पुस्तक छापी गई है। युरोप और अमेरिका के हमारे शिक्षित भाईयों ने हाल ही मे संस्कृत भाषा का अध्ययन शूरु किया है, और हमारा विश्वास है कि यह पुस्तक बहुत ही कम समय में उनके हाथों में पहुंचेगी। इस पुस्तक में १०४ श्लोक सहित प्रचुर मात्रा में भाष्य है। यह श्री चैतन्य महाप्रभु के जीवन के उन सभी उपाख्यानों का एक संक्षिप्त उल्लेख करती है, जो कृष्ण दास कविराज गोस्वामी द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ श्री चैतन्य चरितामृत में वर्णित हैं। ७५ से ८६ श्लोक महापुरुष श्री चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों की रुपरेखा प्रस्तुत करते हैं। अपने अंग्रेजी बोलने वाले पाठकों को पुस्तक पढ़ने में सहायता करने के लिए हमने साहित्य का संक्षेप यहां अंग्रेजी में प्रस्तुत किया है।

आविर्भाव

श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्म मायापुर के नदिया शहर में, २३ फाल्गुन १४०७ शकाब्द की सन्ध्या को सूर्यास्त के बाद, ईसाई वर्ष के १८ फरवरी, सन् १४८६ में हुआ। उनके जन्म के समय में चंद्रग्रहण था, और इस अवसर पर नदिया के लोग, परम्परानुसार, भागीरथी नदी (गंगा नदी) में "हरिबोल!" के उच्चारण सहित स्नान कर रहे थे। उनके पिता जगन्नाथ मिश्रा, एक गरीब वैदिक ब्राह्मण (पुजारी) थे, और उनकी माता सचीदेवी, एक आदर्शस्वरुप स्वभाव की महिला थी। दोनों मूल रुप से सिलहट में रहने वाले ब्राह्मण परिवारों के वंशज थे। महाप्रभु इतने सुंदर बालक थे कि नगर की सारी महिलाएं उन्हें उपहार अर्पण करने आती। उनके नानाजी, प्रसिद्ध ज्योतिषी पंडित नीलांबर चक्रवर्ती ने भविष्यवाणी की थी कि यह बालक समय आने पर एक महान व्यक्ति होगा, और इसलिए उन्होंने उसे विश्वंभर नाम दिया। उनके सुनहरे रंग के कारण पड़ोस की महिलाएं उन्हें गौरहरि कहकर पुकारती, और उनकी माता उन्हें निमाई कहकर पुकारती क्योंकि जहां पर उनका जन्म हुआ था वहां पर एक नीम का पेड़ था। बालक बहुत सुंदर था और हर कोई उसे प्रतिदिन देखना पसंद करता था। जैसे-जैसे वह बड़ा हुआ वह एक शरारती और मनमौजी बालक बन गया। अपने पांचवे वर्ष के बाद उन्हें पाठशाला में भर्ती किया गया जहां वे बहुत ही कम समय में बंगाली भाषा में माहिर बन गए।

श्री चैतन्य के अधिकांश समकालीन जीवनकारों ने उनके बारे में कुछ उपाख्यानों का उल्लेख किया है, जो उनके प्रारंभिक चमत्कारों का सामान्य इतिहास है। कहा जाता है कि बाल्यावस्था में वे अपनी माता की गोद में लगातार रोते थे, परन्तु जब पड़ोस की महिलाएं और उनकी माता "हरिबोल" गाते तब वे शांत हो जाते थे। इस प्रकार घर में निरन्तर "हरिबोल" का कीर्तन जारी रहता, जो एक तरह से महाप्रभु के भविष्य के प्रचारकार्य की भविष्यवाणी करता है। यह भी कहा गया है कि, एक बार जब उनकी माता ने उन्हें खाने के लिए मिठाई दी, तो उन्होंने मिठाइयों की जगह पर मिट्टी खाई। उनकी माता द्वारा कारण पुछे जाने पर उन्होंने कहा कि चूंकि मिष्ठान्न मिट्टी

का ही एक रुपांतरण है, इसलिए मिष्ठान्न के समान मिट्टी को भी खाया जा सकता है। तब उनकी माता, जो आखिर एक विद्वान की पत्नी ठहरीं, उन्होंने समझाया कि प्रत्येक पदार्थ का अपना विशेष उपयोग होता है। मिट्टी के घड़े का उपयोग जलपात्र के रुप में किया जाता है, लेकीन मिट्टी के ईंट की स्थिती में ऐसा उपयोग संभव नहीं है। इस तरह, मिष्ठान्न का उपयोग मिट्टी के रुप में नहीं बल्कि आहार के रुप में किया जाता है। बालक ने अपनी माता के वचनों को स्वीकार किया और मिट्टी खाने में अपनी मूर्खता को समझते हुए ऐसा फिर न करने के लिए राजी हुआ।

प्रारंभिक जीवन

एक अन्य चमत्कारी कार्य का वर्णन किया गया है। एक तीर्थयात्री ब्राह्मण ने जगन्नाथ मिश्रा के घर आतिथ्य स्वीकार किया। ब्राह्मण ने भोजन तैयार किया और भोग अर्पण करके कृष्ण का ध्यान करने बैठे। इसी बीच बालक आया और उसने पके हुए चावल को स्वयं खा लिया। बालक के कार्य से ब्राह्मण विस्मित हुए और जगन्नाथ मिश्रा की आग्रह पर उन्होंने फिर से भोजन तैयार किया। किन्तु जैसे ही ब्राह्मण श्री कृष्ण को भोग अर्पण करने ध्यान में बैठे बालक ने फिर से चावल खा लिए। ब्राह्मण को तीसरी बार भोजन बनाने के लिए राजी किया गया। इस समय तक घर के सभी निवासी निद्रामग्न हो चुके थे, और ऐसे में यात्री ब्राह्मण को बालक ने परम पुरुष श्री कृष्ण का अपना असली रुप प्रकट करते हुए उन पर कृपा दिखाई। अपने आराध्य भगवान को प्रकट हुआ देख ब्राह्मण भावातिरेक में डूब गया।

यह भी उल्लेख है कि एक बार दो चोरों ने बालक के गहने चुराने के इरादे से घर के दरवाजे से बालक को चुरा लिया और रास्ते मे उसे मिठाई खिलाई। बालक ने अपनी मायावी शक्ती का उपयोग किया और चोरों को वापस अपने घर की ओर निर्देशित कर दिया। पता चलने के डर से चोर बालक को वही छोड़कर भाग गए।

एक और चमत्कार वर्णन किया गया है कि एक बार बालक ने हिरण्य और जगदीश से, एकादशी के दिन कृष्ण की पूजा के लिए उनके द्वारा एकत्र किए गए सभी भोग

अर्पण की मांग की, और उन्हें प्राप्त कर लिया। मात्र चार वर्ष की आयु में, एक बार वे फैंके गए पात्रों के ढेर पर जा बैठे, जिन्हें उनकी माता अपवित्र मानती थीं। उन्होंने अपनी माता को समझाया कि भोजन पकाने के बाद फेंके गए मिट्टी के बर्तनों के संबंध मे पवित्रता और अपवित्रता का कोई सवाल ही नहीं है। ये विवरण उनकी पांचवी वर्ष तक की सुकुमार अवस्था से संबंधित है।

आठवें वर्ष में उन्हें मायापुर गांव के पास गंगानगर में गंगादास पंडित की पाठशाला में भर्ती किया गया। केवल दो वर्षों में ही वे संस्कृत व्याकरण और काव्यालंकार में सुशिक्षित हो गए। इसके बाद उनकी पढ़ाई अपने घर पर ही व्यक्तिगत तौर पर स्वाध्याय के रूप में हुई, जहां विद्वान पिता के सभी महत्वपुर्ण ग्रंथ उन्हें उपलब्ध थे। प्रतीत होता है कि उन्होंने प्रख्यात पंडित रघुनाथ शिरोमणि के अधीन अध्ययन करने वाले अपने मित्रों के साथ प्रतिस्पर्धा में स्मृति (शास्त्र) और न्याय (तर्क) का स्वयं ही अध्ययन किया।

दस वर्ष की आयु के बाद निमाई व्याकरण, काव्यालंकार, स्मृति और न्याय के सुशिक्षित विद्वान बन गए। उसके बाद उनके बड़े भाई विश्वरूप ने घर का त्याग करके संन्यास स्वीकार कर लिया। हालांकि निमाई एक अल्प आयु के बालक होने पर भी, उन्होंने अपने माता-पिता को यह कहते हुए सांत्वना दी कि वह भगवान की प्रसन्नता के लिए उनकी सेवा करेंगे। इसके तुरंत बाद, उनके पिता इस दुनिया को छोड़ कर चले जाते हैं। इससे उनकी माता अत्यंत ही दुखी हो जाती हैं लेकिन श्री चैतन्य अपने नित्य-संतुष्ट व्यवहार से उन्हें सांत्वना देते हैं।

विवाह और सामाजिक जीवन

चौदह या पंद्रह वर्ष की आयु में महाप्रभु का विवाह, नदिया में ही रहनेवाले बल्लभाचार्य की पुत्री लक्ष्मीप्रिया से किया गया। उस समय न्याय शास्त्र और संस्कृत शिक्षा के पीठ के तौर पर प्रख्यात नदिया में, निमाई पंडित को सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में से एक माना जाता था। स्मार्त पंडित ही नहीं, बल्कि साहित्यिक चर्चा में

तर्कशास्त्री भी उनका सामना करने का साहस नहीं करते थे। एक विवाहित व्यक्ति होने के नाते, धनोपार्जन के लिए पद्मा नदी के तट से वे पूर्व बंगाल गए। वहां अपने विद्वत्ता के प्रदर्शन से उन्होंने प्रचुर धन प्राप्त किया। इसी अरसे में उन्होंने समय-समय पर वैष्णवधर्म पर उपदेश दिए। तपन मिश्रा को वैष्णवधर्म के सिद्धांत सिखाने के बाद उन्होंने उन्हें बनारस जाने और वहां रहने का आदेश दिया। पूर्व बंगाल में अपने प्रवास के दौरान उनकी पत्नी लक्ष्मीप्रिया का सांप के काटने से देहान्त हुआ। घर लौटने पर उन्होंने अपनी माता को शोक की स्थिती में पाया। मनुष्य जीवन की अनिश्चितता की बात करते हुए उन्होंने उन्हें सांत्वना दी। माता के आग्रह पर उन्होंने राज-पंडित सनातन मिश्रा की बेटी विष्णुप्रिया से विवाह किया।

यात्रा से लौटने पर निमाई के साथी उनके साथ फिर जुड़ गए। अब वे इतने प्रसिद्ध हो चुके थे कि उन्हें नदिया का सर्वश्रेष्ठ पंडित माना जाता था। स्वयं को महान दिग्विजय कहने वाले कश्मीर के केशव मिश्रा, नदिया के पंडितों के साथ तर्क करने नदिया आए। तथाकथित दिग्विजय के डर से, नदिया के विद्वानों ने किसी निमंत्रण के बहाने शहर छोड़ दिया। केशव मिश्रा ने मायापुर के बाराकोना घाट में निमाई से मुलाकात की, और एक अत्यंत संक्षिप्त चर्चा के बाद वे एक बालक से पराजित हुए। अपमानित होने के भय से एकाएक वहां से पलायन करने के लिए वे मजबूर हो गए। निमाई पंडित अब अपने समय के सबसे बड़े पंडित बन गए।

सोलह या सतरह वर्ष की आयु में, श्री चैतन्य ने अपने कई छात्रों के साथ गया की यात्रा की। वहां उन्होंने प्रख्यात माधवेंद्र पुरी के शिष्य एवं वैष्णव संन्यासी श्री ईश्वरपुरी से आध्यात्मिक दिक्षा ग्रहण की। नदिया लौटने पर, श्री चैतन्य महाप्रभु ने वैष्णव सिद्धांतों का जोरदार प्रचार शुरु किया। उनकी दिव्यता इतनी प्रबलता से प्रकट हुई कि अद्वैत प्रभु, श्रीवास पंडित और अन्य, जिन्होंने श्री चैतन्य के जन्म से पूर्व ही वैष्णव धर्म का स्वीकार किया था, वे इस नवयुवक में इस तरह के परिवर्तन को देखकर चकित हो गए। अब वे केवल एक प्रतिद्वंदी नैयायिक, या तार्किक स्मार्त, या आलोचनात्मक अलंकारशास्त्री नहीं थे। वे कृष्ण का नाम सुनते ही झूम

उठते और अपनी दिव्य भावना के प्रभाव में एक प्रेरित व्यक्ति की तरह व्यवहार करते। प्रत्यक्षदर्शी मुरारी गुप्ता ने वर्णन किया है कि श्रीवास पंडित के घर में अपने सैकड़ों अनुयायियों की उपस्थिति में, जो अधिकतर सब सुशिक्षित विद्वान थे, श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी दिव्य शक्तियों का प्रदर्शन किया। इसी समय उन्होंने अपने निष्ठावान अनुयायियों के साथ श्रीवास पंडित के आँगन में रात्री संकिर्तन (हरिनाम का सामुहिक जाप) के रोजाना कार्यक्रम को प्रारंभ किया। वहां वे प्रवचन करते, गाते, नृत्य करते और सभी प्रकार की आध्यात्मिक भावनाओं को व्यक्त करते। उस समय तक नित्यानंद प्रभु (बलराम के अवतार) भी उनसे जुड़ गए, जो भी एक वैष्णव धर्म के प्रचारक थे और हाल ही में संपूर्ण भारत की यात्रा करके लौटे थे। दरअसल वैष्णव धर्म के अनेक निष्ठावान विद्वान उपदेशक बंगाल के विविध भागों से उनके संग में आए। नदिया अब अनेक वैष्णवाचार्यों का नित्य निवास-स्थल बन गया था, जिनका उद्देश्य वैष्णव धर्म की सब से ऊंची प्रेरणा से मानव जाति को आध्यात्मिक बनाना था।

महाप्रभु के जीवन का ध्येय

श्री चैतन्य महाप्रभु ने नित्यानंद प्रभु और हरिदास ठाकुर को यह प्रथम आदेश दिया, “जाओ मित्रों, नगर की गलियों में लोगों के द्वार पर उनसे मिलकर, उन्हें भक्तिपूर्वक हरिनाम का कीर्तन करने का आग्रह करो और हर शाम अपने प्रचार का परिणाम मुझे सूचित करो।” इस प्रकार आदेश प्राप्त कर दोनों प्रचारक प्रचार को चले और जल्द ही उनकी मुलाकात दो सबसे घृणित व्यक्तियां जगाई और मधाई से हुई। महाप्रभु के उपदेश सुनकर उन्होंने प्रचारकों का अपमान किया, लेकिन जल्द ही वे स्वयं भगवान द्वारा अन्तर्निविष्ट भक्ति के प्रभाव से परिवर्तित हो गए। नदिया के लोग इससे हैरान हुए, और उन्होंने कहा, “निमाई पंडित न केवल एक महान विद्वान हैं, बल्कि निस्संदेह वे स्वयं भगवान द्वारा भेजे गए धर्म प्रचारक हैं।”

इस समय से लेकर उनके तेईसवे वर्ष तक महाप्रभु ने केवल नदिया में ही नहीं, बल्कि आसपास के सभी महत्वपूर्ण नगरों और गांवों में भी अपने वैष्णव सिद्धांतो का प्रचार किया। अपने अनुयायियों के घरो में उन्होंने चमत्कार दिखाए, भक्ति के गूढ़ सिद्धांतों की शिक्षा दी, और अन्य कृष्ण-भक्तों के साथ संकीर्तन किया। नदिया शहर में उनके अनुयायीयों ने गलियों और बाजारों में जाकर हरिनाम संकीर्तन का प्रारंभ किया। इससे एक सनसनी सी फैल गई और विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग भावनाएं जाग उठीं। सारे भक्त बहुत प्रसन्न हुए। परंतु निमाई पंडित की सफलता को देखकर स्मार्त ब्राह्मणों में ईर्ष्या पैदा हुई और उन्होंने श्री चैतन्य को गैर-हिन्दू बताकर उनके विरुद्ध चांद काज़ी से शिकायत की। काज़ी श्रीवास पंडित के घर आते हैं और वहां एक मृदंग तोड़कर यह घोषणा करते हैं कि यदि महाप्रभु ने अपने विचित्र धर्म के बारे में शोर करना बंद नहीं किया तो वह उन्हें और उनके अनुयायियों को मुस्लिम बनाने के लिए विवश हो जायेंगे।

महाप्रभु को इसकी सूचना दी गई, और उन्होंने तुरंत नगरवासियों को संध्या के समय हाथ में मशाल लेकर एकत्रित होने का आदेश दिया। लोगों ने वैसा ही किया तथा अपने संकीर्तन समूह को चौदह दलों में विभाजित करके महाप्रभू आगे बढ़े। काज़ी के घर पहुंचने पर महाप्रभु ने उनके साथ विस्तार में बातचीत की और अंत में महाप्रभु ने उनके शरीर को स्पर्श कर अपने वैष्णव प्रभाव को उनके हृदय में व्यक्त किया। काज़ी ने रोते हुए स्वीकार किया कि उन्हें एक गहरा आध्यात्मिक प्रभाव महसूस हुआ जिससे उनके सारे संदेह दूर हो गए और उनमें एक ऐसी धार्मिक भक्तिभाव उत्पन्न हुई कि उन्हें परमानंद प्राप्त हुआ। इसके बाद काज़ी भी संकीर्तन में शामिल हो गए। महाप्रभु की दिव्य शक्ति को देखकर दुनिया विस्मित हुई, और इस घटना के बाद सैकड़ो अधार्मिक लोग परिवर्तित होकर उनके ध्वज के तले शामिल हुए।

इसके पश्चात कुलिया के कुछ ईर्ष्यालु एवं नीच विचार वाले ब्राह्मणों ने महाप्रभु से विद्रोह किया और उनके विरुद्ध एक दल का संघटन किया।

संन्यास धारण

महाप्रभु स्वभावत: एक कोमल हृदय वाले व्यक्ति थे लेकीन वे अपने सिद्धांतों पर सदृढ़ थे। उन्होंने स्पष्ट किया कि दलबंदी और साम्प्रदायिकता, प्रगति के दो सबसे बड़े शत्रु हैं, और जब तक वे नदिया के एक परिवारवाले निवासी बने रहेंगे तब तक वे अपने लक्ष्य में सफल नहीं हो पाएंगे। अत: उन्होंने एक निश्चित परिवार के साथ अपने संबंध को तोड़कर विश्वनागरिक बनने का संकल्प किया। अपने चौबीसवें वर्ष में कटवा के केशव भारती से उन्होंने दृढ़ निश्चय के साथ संन्यास ग्रहण किया। उनकी माता एवं पत्नी उनके विरह में फूट-फूटकर रोईं, परन्तु हृदय से कोमल होते हुए भी महाप्रभु अपने सिद्धांतों पर दृढ़ रहे। उन्होंने संपूर्ण मानवता को कृष्ण की असीमित आध्यात्मिक दुनिया प्रदान करने के लिए अपने घर का परित्याग किया।

संन्यास लेने के बाद उन्हें शांतिपुर में अद्वैत प्रभु के घर जाने के लिए प्रेरित किया गया। श्री अद्वैत ने नदिया से उनके मित्रों और प्रशंसकों को निमंत्रित किया तथा पुत्र के दर्शन के लिए सची माता को भी लेके आए। जब सची माता ने अपने पुत्र को संन्यासी के वेश में देखा तो उनके मन में सुख तथा दुख दोनों भाव प्रकट हुए। संन्यासी होने के कारण श्री चैतन्य ने एक कौपीन और बहिर्वास के अलावा कुछ नहीं पहना था। उनका सिर मुण्डित था तथा उनके हाथ में एक दंड और एक कमण्डलु था। अपनी स्नेहमयी माता के चरणों में गिरकर उनके पावन पुत्र ने कहा, “माता! यह शरीर आपका है, इसलिए मुझे आपके आदेशों का पालन जरुर करना चाहिए। मुझे मेरी आध्यात्मिक प्राप्ति के लिए वृंदावन जाने की अनुमति दें।” माता सची ने अद्वैत प्रभु और अन्यों के परामर्श से, अपने पुत्र को जगन्नाथ पुरी में रहने के लिए कहा, ताकि वह उनके बारे में समय-समय पर जानकारी प्राप्त कर सकें। महाप्रभु इस प्रस्ताव पर राजी हो गए और कुछ ही दिनों में वे शांतिपुर से उड़ीसा के लिए निकल पड़े।

उनके जीवनकारों ने शांतिपुर से पुरी तक बहुत विस्तार से श्रीकृष्ण चैतन्य (यह नाम उन्हें संन्यास के पश्चात मिला) की यात्रा का वर्णन किया है। उन्होंने भागीरथी नदी

के किनारे छत्रभोग तक यात्रा की, जो वर्तमान में थाना मथुरापुर, डायमंड हार्बर, २४ परागना में स्थित है। वहां से उन्होंने एक नौका लिया और मिदनापुर जिले के प्रयाग घाट तक गए। फिर रास्ते में भुवनेश्वर मंदिर के दर्शन करके बालेश्वर और कटक के मार्ग से पदयात्रा करते हुए वे पुरी पहुंचे।

परम सत्य का प्रकटन

पुरी पहुंचने पर उन्होंने श्री जगन्नाथ के दर्शन किए। सार्वभौम भट्टाचार्य की प्रार्थना पर श्री चैतन्य ने उनसे भेंट की। सार्वभौम भट्टाचार्य उस समय के महान पंडित थे। उनके ज्ञान की कोई सीमा नहीं थी। वे अपने समय के सर्वश्रेष्ठ नैयायिक (तर्कशास्त्री) थे, साथ हि वे शंकराचार्य सम्प्रदाय के वेदान्त दर्शन के सबसे बड़े विद्वान के तौर पर प्रख्यात थे। उनका जन्म नदिया (विद्यानगर) में हुआ था जहां पर अपनी पाठशाला में वे अपने असंख्य शिष्यों को न्याय दर्शन की शिक्षा देते। निमाई पंडित के जन्म के कुछ ही समय पहले वे पुरी चले आए थे।

उनके बहनोई, गोपीनाथ मिश्रा ने नये संन्यासी का परिचय सार्वभौम से करवाया। श्री चैतन्य की सुंदरता को देखकर सार्वभौम चौंक गए और उन्हें चिंता हुई कि इस नवयुवक को अपने जीवन की पूरी अवधि तक संन्यास बनाए रखना में कठिनाई हो सकती है। गोपीनाथ, जो महाप्रभु को नदिया से जानते थे, उन्हें महाप्रभु पर बहुत श्रद्धा थी, और उन्होंने बताया कि यह संन्यासी कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। इस बात पर गोपीनाथ और सार्वभौम में जोरदार बहस हुई। तब सार्वभौम ने महाप्रभु से यह अनुरोध किया कि वे उनसे वेदांत-सूत्र का पाठ सुने, और महाप्रभु ने मौनपूर्वक इस विनती को स्वीकार किया।

सार्वभौम ने सात दिन तक गंभीरतापूर्वक वेदान्तसूत्र की व्याख्या की जिसे श्री चैतन्य ने मौन रहकर सुना। अंत में सार्वभौम भट्टाचार्य ने कहा, “कृष्ण चैतन्य! मुझे लगता है कि आप वेदांत को नहीं समझते हैं, क्योंकि आपने मेरे पाठ और मेरी व्याख्या को सुनकर कुछ भी नहीं कहा।” श्री चैतन्य ने उत्तर दिया कि वे सूत्रों को बहुत अच्छी

तरह से समझते हैं, लेकिन वे यह नहीं समझ पाए कि अपने भाष्य से शंकराचार्य का तात्पर्य क्या है। इससे आश्चर्यचकित होकर सार्वभौम ने कहा,"यह कैसे संभव है कि आप सूत्रों के अर्थ को समझते हैं, लेकिन सूत्रों को समझाने वाले भाष्य को नहीं समझते? बहुत अच्छा। यदि आप सूत्रों को समझते हैं, तो कृपया अपनी व्याख्या मुझे सुनाएं।"

इस पर महाप्रभु ने शंकर के सर्वेश्वरवादी टिप्पणी का स्पर्श किये बिना, अपने अनुसार ही सभी सूत्रों पर व्याख्या सुनाई। अपनी गहरी समझ के साथ, सार्वभौम ने श्री चैतन्य की व्याख्या में सत्य, सौन्दर्य और सामंजस्य को देखा, तथा उनको यह स्वीकार करना पडा कि उन्हें पहली बार ऐसा कोई मिला है जो उन्हें ब्रह्मसुत्रों को इतने सरल रूप से समझा सके। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि शंकर की टिप्पणियों में उन्होंने कभी वेदान्तसूत्र पर इतनी सहज व्याख्या नहीं पायी जो उन्हें महाप्रभु से प्राप्त हुई। फिर उन्होंने महाप्रभु के समर्थक और उनके अनुयायी के रूप में स्वयं को समर्पित किया। कुछ ही दिनों में सार्वभौम उस समय के सर्वश्रेष्ठ वैष्णवों मे से एक बन गए। जब यह खबर फैली तो सम्पूर्ण उड़ीसा में लोग श्री कृष्ण चैतन्य के गुण-गान करने लगे, और सैकड़ों लोग उनके पास आए और उनके अनुयायी बन गए।

कुछ समय बाद, महाप्रभु ने कृष्णदास नाम के एक ब्राह्मण के साथ दक्षिण भारत की यात्रा की। उनके जीवनीकारों ने हमें इस यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया है। वे सर्वप्रथम कुर्मक्षेत्र गये, जहां उन्होंने चमत्कार से वासुदेव नामक एक कुष्ठरोगी का रोग निवारण किया। वहां से उन्होंने विद्यानगर के राज्यपाल रामानंद राय से मुलाकात की और उनसे प्रेमभक्ति के विषय पर एक दार्शनिक चर्चा की। सात ताल वृक्षों को अपने स्पर्श से गायब करके उन्होंने एक और चमत्कार दिखाया। इन्हीं वृक्षों के पीछे छिपकर भगवान श्री रामचंद्र ने अपना बाण चलाकर महान राजा बाली का वध किया था। संपूर्ण यात्रा के दौरान महाप्रभु ने वैष्णवधर्म और नाम संकीर्तन का प्रचार किया।

रंगक्षेत्र में उन्होंने वेंकट भट्ट के घर में चातुर्मास्य बिताया। वहां उन्होंने वेंकट के सारे परिवार को रामानुज वैष्णव से कृष्णभक्त बना दिया। उन्हीं में वेंकट का दस साल का गोपाल नामक पुत्र था, जो बाद में वृंदावन आया और अपने स्वामी श्री कृष्ण चैतन्य के सेवकों, छह गोस्वामियों में से एक बन गया। अपने चाचा प्रबोधानंद सरस्वती से संस्कृत शिक्षा पाकर गोपाल भट्ट ने वैष्णव धर्म पर अनेक ग्रन्थ लिखे।

दक्षिण भारत में कन्याकुमारी तक अनेक स्थलों का परिभ्रमण करके श्री चैतन्य भीमा नदी पर स्थित पंढरपुर के मार्ग से दो वर्षों बाद पुन: पुरी पधारे। उक्त स्थान पर उन्होंने श्री तुकाराम को कृष्ण भक्ति से प्रेरित किया, जो फिर स्वयं एक धार्मिक प्रचारक बन गए (मुम्बई सिविल सेवा के सत्येन्द्रनाथ टैगोर द्वारा संकलित तुकाराम के अभंगों में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है)। साथ ही अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने बौद्ध, जैन और मायावादियों से कई स्थानों पर चर्चा की और अपने विरोधियों को वैष्णव मत में बदल दिया। पुरी लौट आने पर, राजा प्रतापरुद्र और साथ ही कई ब्राह्मण पंडित, श्री चैतन्य महाप्रभु के ध्वज तले शामिल हुए।

श्री चैतन्य के प्रधान सहयोगी

अपने अट्ठाईसवे वर्ष में, महाप्रभु बंगाल में मालदा के गौड़ तक गये। वहां उन्होंने रूप और सनातन नाम के दो महान व्यक्तियों को अपने दर्शन से धन्य किया। रुप और सनातन कर्नाटक-ब्राह्मण वंश के थे पर गौड़ के शासक हुसैन शाह से अपनी रोज़ाना संगत के कारण दोनों भाईयों को मुस्लिम माना जाता था। उनके नाम बादशाह ने बदलकर दबीर खास और साकार मलिक दिए थे। अपने मालिक को वे बहुत प्रिय थे क्योंकि वे दोनों फारसी, अरबी और संस्कृत के विद्वान और राज्य के वफादार सेवक थे। दोनों सज्जनों को हिंदु समाज में पुन: लौटने का कोई रास्ता नहीं था इसलिए महाप्रभु जब पुरी में रहते थे तब दिव्य सहायता की अपेक्षा में उन्होंने महाप्रभु को पत्र भी लिखा था। महाप्रभु ने उत्तर में लिखा कि वे स्वयं उनके पास आएंगे और उन्हें उनकी आध्यात्मिक समस्याओं से मुक्ति दिलाएंगे। अतएव

गौड़ में उनके आगमन पर दोनों भाई लंबे समय से अपूर्ण प्रार्थना को लेकर उनके सामने उपस्थित हुए। महाप्रभु ने उन्हें वृंदावन जाने को कहा और वहां उनसे मिलने का आदेश दिया।

श्री चैतन्य शांतिपुर में अपनी प्रिय माता से मिलकर पुन: पुरी लौट आए। पुरी में थोडे समय रुकने के बाद उन्होंने वृंदावन के लिए प्रस्थान किया। इस बार उनके साथ बलभद्र भट्टाचार्य नाम के एक भक्त थें। उन्होंने वृंदावन का दौरा किया और वहां से प्रयाग आए, जहां पर कुरान के तर्कों का उपयोग करके बड़ी संख्या में मुसलमानों को वैष्णवों में परिवर्तित किया। उन वैष्णवों के वंशज आज भी पठान वैष्णव कहलाते हैं।

इलाहाबाद में रूप गोस्वामी की भेंट श्री चैतन्य से हुई, जिन्होंने उन्हें दस दिनों तक आध्यात्मिक प्रशिक्षण प्रदान किया और उन्हें दो उद्देश्यों पर वृंदावन जाने का निर्देश दिया। प्रथम उद्देश्य था, तर्कसंगत रूप से शुद्ध भक्ति और प्रेम की व्याख्या करते हुए धार्मिक ग्रंथो को लिखना। दूसरा उद्देश्य था, उन स्थानों को पुर्नजीवित करना जहां श्रीकृष्णचंद्र ने द्वापर-युग के अंत में दुनिया के कल्याण के लिए अपनी दिव्य लीलाओं को प्रकट किया था।

रूप गोस्वामी ने इलाहाबाद से वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया तथा महाप्रभु वहां से बनारस गए। बनारस में वे चंद्रशेखर के घर पर रहे और तपन मिश्रा के घर से वे अपनी दैनिक भिक्षा स्वीकार करते। यहीं पर सनातन गोस्वामी ने उनके सानिध्य में रहकर दो महिनों तक आध्यात्मिक मामलों में शिक्षा ग्रहण की। जीवनीकारों ने, विशेषत: कृष्णदास कविराज ने, रूप और सनातन को श्री चैतन्य द्वारा प्राप्त हुई शिक्षाओं का विस्तृत वर्णन किया है। कृष्णदास कविराज समकालीन लेखक तो नहीं थे, लेकिन महाप्रभु के प्रत्यक्ष शिष्य, छह गोस्वामियों से उन्हें संपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई। सनातन और रूप गोस्वामी के भतीजे जीव गोस्वामी ने अपने मूल्यवान ग्रंथ षट्-संदर्भ में अपने स्वामी, महाप्रभु के उपदेशों का चिंतन किया है। हमने इन महात्माओं के ग्रंथों के आधार पर ही श्री चैतन्य की शिक्षाओं को एकत्रित करके उन्हें सारांशित किया है।

बनारस में एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण के घर पर शहर के विद्वान संन्यासियों के साथ श्री चैतन्य की वार्तालाप हुई। उन संन्यासियों को उस ब्राह्मण ने चर्चा के लिए निमंत्रित किया था। इस वार्तालाप में महाप्रभु ने अपने दिव्य प्रकाश का प्रदर्शन किया जिससे सारे संन्यासी उनकी ओर आकर्षित हुए। उसके उपरान्त संवाद हुआ। संन्यासियों का नेतृत्व उनके सर्वोपरि ज्ञानी प्रकाशानन्द सरस्वती कर रहे थे। एक संक्षिप्त विवाद के बाद, वे श्री चैतन्य के प्रति समर्पित हुए और यह स्वीकार किया कि वे शंकराचार्य की टिप्पणियों से गुमराह हो गए थे। विद्वान पंडितों के लिए भी श्री चैतन्य का विरोध करना असंभव था क्योंकि उनमें कुछ ऐसी विशेष बात थी जो विद्वानों के हृदयों को स्पर्श कर गई और उन्हें अपने आध्यात्मिक सुधार के लिए उत्सुक बना देता। बनारस के संन्यासी शीघ्र ही श्री चैतन्य के चरणों में गिरकर उनसे कृपा की याचना करने लगे। श्री चैतन्य ने तब शुद्ध भक्ति का उपदेश देकर उनके हृदयों को दिव्य कृष्णप्रेम से भर दिया, जिससे वे सांप्रदायिक भावनाओं का त्याग करने के लिए तत्पर हो गए। संन्यासियों के इस अद्भुत परिवर्तन पर सारा बनारस वैष्णव बन गया और सबने अपने नए प्रभु के साथ संकिर्तन में भाग लिया।

सनातन को वृंदावन भेजने के बाद महाप्रभु अपने साथी बलभद्र के साथ वनमार्ग से पुन: पुरी गए। बलभद्र ने बताया कि पुरी के मार्ग में महाप्रभु ने अनेक चमत्कार प्रदर्शित किए, जैसे कि कृष्ण का नाम सुनाकर बाघ और हाथियों को नचाना।

अपने इकत्तिसवें वर्ष से लेकर अड़तालीसवे वर्ष में अपने तिरोभाव तक टोटा-गोपीनाथ मंदिर में संकीर्तन करते हुए महाप्रभु पुरी में लगातार काशी मिश्रा के घर पर निवास करते थे। इन अठाराह वर्षों के दौरान उनका जीवन एक स्थिर प्रेम और भक्तिमय जीवन था। वे असंख्य अनुयायियों से घिरे हुए थे, और उनमें सभी उच्चतम वैष्णव थे, जो शुद्ध चरित्र, विद्वत्ता, दृढ़ धर्मनिष्ठता और राधा-कृष्ण के दिव्य प्रेम में सामान्य लोगों से भिन्न थे।

स्वरुप दामोदर जो महाप्रभु के नदिया निवासकाल में पुरुषोत्तमाचार्य के नाम से जाने जाते थे, वे बनारस से पधारकर महाप्रभु के साथ जुड़े और उनके सेक्रेटरी के रुप में

उनकी सेवा में लगे रहे। स्वरुप दामोदर से शुद्धता और सार्थकता संबंधी स्वीकृति प्राप्त किए बिना कोई भी काव्य और दर्शनशास्त्र महाप्रभु के सामने प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। उनके दूसरे सबसे घनिष्ठ विश्वासपात्रों में रामानंद राय थे। वे और रामानंद राय दोनों स्तुति गाते और महाप्रभु भक्ति के कुछ संकेतों पर अपना भाव व्यक्त करते। परमानंद पुरी उनके धार्मिक मंत्री थें।

महाप्रभु बहुत कम समय सोते थे। उनमें उठनेवाली भावनाएं उन्हें दिन-रात आध्यात्मिक आकाश में दूर-दूर तक ले जाती, और उनके प्रशंसक तथा अनुयायी उनकी इस अवस्था की निरंतर निगरानी करते। वे भक्ती करते, वृंदावन में अपने प्रचारकों के साथ संपर्क करते तथा पहली बार आए धार्मिक भक्तजनों से बातचीत करते। अपना कुछ भी विचार किए बिना ही वे नाचते, गाते और भक्तिप्रेम में तन्मय हो जाते। उनके दर्शनार्थ आने वाले सभी लोगों ने उन्हें मानवजाति के कल्याण के लिए भौतिक जगत में प्रकट हुए सर्व-सुंदर ईश्वर के रुप में देखा। अपनी माता को वे हमेशा प्रेम से याद करते और कभी कभी नदिया जाने वालों के हाथों, माता के लिए महाप्रसाद भेजते। वे स्वभावत: सौम्य थे, विनम्रता उनमें झलकती थी, और उनका मधुर स्वरुप उनके संपर्क में आने वाले सभी लोगों को प्रसन्नचित्त कर देता था।

श्री चैतन्य ने नित्यानंद को बंगाल का मुख्य प्रचारक नियुक्त किया। उन्होंने अपने छह शिष्यों (गोस्वामीयों) को वृंदावन में प्रचार के लिए भेजा। अपने पवित्र जीवन से भटकने वाले सभी शिष्यों को उन्होंने दंडित किया। ऐसा उन्होंने छोटे हरिदास के मामले में स्पष्ट रुप से किया था। जो उनसे प्रार्थना करने आते, उन लोगोंको जीवन में उचित निर्देश देने से वे कभी नहीं चूकते। श्री रघुनाथ दास गोस्वामी को शिक्षा देते हुए महाप्रभु में इस लक्षण को देखा जा सकता है। हरिदास (वरिष्ठ) के साथ उनके व्यवहार से पता चलता है कि कैसे वे धर्मपरायण लोगोंसे प्रेम करते और आध्यात्मिक भाईचारे के समर्थन में जाति भेद की अवहेलना करते थे।

श्री चैतन्य महाप्रभु
के उपदेश

भगवान चैतन्य महाप्रभु सबसे पहले हमें यह सिखाते हैं कि लोगों का तर्कसंगत ज्ञान आत्मा के दिव्य क्षेत्र तक पहुंचने में सक्षम नहीं हैं। महाप्रभु कहते हैं कि इन मामलों में तर्क बिलकुल ही अपर्याप्त है। हालाँकि, उनका यह भी मानना है कि लोगों में धार्मिक भावना, बहुत सीमित मात्रा में भी आत्मा को समझने की शक्ति रखती है। केवल आंतरिक प्रेरणा ही आध्यात्मिक मामलों को स्पष्ट कर सकती है। प्रेरणा, जो उच्च लोक से सिद्ध संत-महात्माओं द्वारा आती है, वह वेदों के रूप में प्रकट हुई है। इसलिए वेद, अपने व्याख्यात्मक वर्णन या पुराणों सहित, आत्मा के मामलों में एकमात्र सबूत हैं, जिनका स्वभाव सनातन होता है। इसलिए वैदिक सत्य को अध्यात्म के मामले में एकमात्र सत्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उत्प्रेरित सत्य की ईमानदारी से सहायता करते हुए तर्क को सहायक प्रमाण के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। भगवान चैतन्य महाप्रभु के अनुसार वेद हमें नौ प्रमुख सिद्धांत सिखाते हैं।

१. हरि (सर्वशक्तिमान) अद्वितीय हैं।

२. वे हमेशा अनंत शक्ति से संपन्न हैं।

३. वे रस के सागर हैं।

४. आत्मा उनका "विभिन्न अंग" या पृथक भाग है।

५. कुछ आत्माएं प्रकृति या उसकी मायावी ऊर्जा में लीन हैं।

६. कुछ आत्माएं प्रकृति की पकड़ से मुक्त हैं।

७. सभी आध्यात्मिक और भौतिक घटनाएँ, सर्वशक्तिमान हरि के, अचिन्त्य-भेदाभेद-प्रकाश हैं।

८. केवल भक्ति ही आध्यात्मिक अस्तित्व के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन है।

९. केवल कृष्ण-प्रेम ही आध्यात्मिक अस्तित्व की अंतिम वस्तु या लक्ष्य है।

१. सर्वशक्तिमान हरि

वैदिक धर्मशास्त्र में देवता के रचनात्मक सिद्धांत को ब्रह्मा में व्यक्त किया गया है एवं विनाशकारी सिद्धांत को शिव में। इंद्र, प्रशासन के कुछ निचले पहलुओं के प्रधान हैं। इसलिए वे (शिव, ब्रह्मा, इंद्र) स्वयं सर्वशक्तिमान नहीं हैं, बल्कि सर्वशक्तिमान के विभिन्न गुणों के अलग-अलग प्रतिनिधि हैं। उन्होंने अपनी शक्तियों को एक मूल स्रोत से प्राप्त किया है। इस प्रकार से, वे हरि की सेवा में अधीनस्थ व्यक्तित्व हैं। मूर्ति के तीन अलग-अलग दार्शनिक विचार हैं, अर्थात (१) सर्वेश्वरवादी विचारधारा के सर्वव्यापी ब्रह्मन का विचार, (२) योग दर्शन की एक सार्वभौमिक आत्मा (परमात्मा) का विचार, और (३) एक व्यक्तिगत भगवान का विचार, उनकी सभी महिमा, पराक्रम, सौंदर्य, ज्ञान और सर्वोच्चता से संपन्न व्यक्तित्व के रूप में। इस तरह ब्रह्मन और परमात्मा के सिद्धांत, भगवान के सिद्धांत में शामिल हैं। अतएव, हरि ही भगवान हैं, वे ही सर्वोच्च व्यक्तित्व हैं।

मानवीय अवधारणा या तो मानसिक होते हैं या आध्यात्मिक। चूंकि मानसिक अवधारणा का संबंध पदार्थ के सृजित सिद्धांत से है इसलिए यह दूषित होता है।

आध्यात्मिक अवधारणा निश्चित रूप से भगवान तक पहुंचने के लिए निकटतम दृष्टिकोण है। और फिर भगवान के विषय में आध्यात्मिक अवधारणा के दो प्रकार हैं। पहले प्रकार में भगवान का ऐश्वर्य व्यक्ति पर ज्यादा प्रभावित होता है, और दूसरे में उनकी व्यक्तिगत सुंदरता उनके सारे ऐश्वर्य को दबा देती है। पहली अवधारणा में भगवान को वैकुंठ के नारायण के रूप में दर्शाया गया है, जो प्रभुओं के प्रभु हैं और ईश्वरों के ईश्वर हैं। दूसरी अवधारणा में भगवान को सर्व-सौन्दर्य-युक्त कृष्ण को राधिका के साथ दर्शाया गया है, जो कृष्ण की ह्लादिनी या सर्वश्रेष्ठ उल्लसित ऊर्जा का स्वरूप है।

कृष्ण लोगों के बीच एक साधारण मनुष्य के रूप में प्रकट होते हैं, फिर भी आम तौर पर, उन्हें देवताओं से ऊँचे परम भगवान के रूप में स्वीकार किया जाता है। कृष्ण सभी आत्माओं को आकर्षित करते हैं, उनसे प्रेम करते हैं और उनमें आनंद की भावना को जगाते हैं। उनके गुण और सभी व्यक्तिगत सामग्री विशुद्ध रूप से आध्यात्मिक हैं और उनका इस भौतिक संसार से कोई संबंध नहीं है। मनुष्य की भौतिक इन्द्रियां उन तक पहुंच नहीं सकतीं। यह मनुष्य की आत्मा है जो उन्हें सीधे देख सकती है और उनसे संपर्क कर सकती है। भौतिक वस्तुओं में आसक्त आत्मा ने, अपने पतित होने के कारण, आध्यात्मिक जगत में कृष्ण और उनकी आध्यात्मिक लीला के दर्शन के अधिकार को खो दिया है, लेकिन कृष्ण अपनी सर्वोच्च शक्ति और स्वतंत्र विशेषाधिकार के प्रयोग से, सभी व्यक्तियों के समक्ष अपनी समस्त वृंदावन लीला के साथ प्रकट हो सकते हैं। एक तर्कसंगत व्यक्ति कृष्ण और उनकी लीला को शायद ही समझ सकता है और शायद ही उनका विश्वास कर सकता है, लेकिन जब व्यक्ति की आध्यात्मिक दृष्टि में सुधार होता है, तब वह कृष्ण को देखता है और उन्हें हृदय से प्रेम करता है। इस विषय को, शायद ही, संपूर्णता और सुविस्तृत रूप से समझाया जा सकता है। इसलिए हम इस बात को इन शब्दों के साथ अपने पाठकों पर छोड़ते हैं – "भौतिक जीवन की बेड़ियों का धीरे-धीरे त्याग करें। अपनी आध्यात्मिक चेतना को आंतरिक रूप से विकसित करें। उन पूर्वाग्रहों को छोड़ दें

जो आपने तथाकथित तर्कसंगत विचारकों से प्राप्त किए हैं, जो आत्मा के अस्तित्व को नकारते हैं। विनम्र बनें और आध्यात्मिक प्राप्ति की दिशा में प्रवृत्त हुए लोगों का सम्मान करना सीखें। इसे अपने दिल, दिमाग और ताकत से, वैष्णवों की संगति में करें, और आप कुछ ही समय में कृष्ण को देखेंगे। कृष्ण कोई काल्पनिक पात्र नहीं हैं और ना ही आपको यह सोचने का अधिकार है कि वे केवल एक भौतिक दृग्विषय हैं जिन्हें मूर्खों ने भगवान समझ रखा है। आत्मगत (चेतना संबंधी) से वस्तुगत (विषय संबंधी) को अलग करने के ज्ञान की प्रक्रिया से कृष्ण को नहीं समझा जा सकता, और न ही उन्हें स्वार्थी व्यक्तियों द्वारा लोगों पर अधिरोपित किए गए भगवान के विचार से स्वीकार किया जाना चाहिए। कृष्ण शाश्वत हैं, आध्यात्मिक रूप से सत्य हैं, भौतिक जड़-तत्त्व के बंधन से मुक्त मानव आत्मा पर प्रतिबिंबित होते हैं, और हमारे हृदय से उद्गम होने वाले प्रेम के विषय पात्र हैं। उन्हें इस रूप में स्वीकार करें तो आप उन्हें अपनी आत्मा की आँखों से देख सकेंगे।

“पारलौकिक भगवान का वर्णन करने के लिए शब्द कम पड़ते हैं। सर्वोच्च, सर्वश्रेष्ठ और सबसे आध्यात्मिक आदर्श भगवान कृष्ण में पाया जाता है। उनके खिलाफ तर्क देना केवल अपने आप को धोखा देना है, और अपने आप को उन आशीर्वादों से वंचित करना है जो भगवान ने मनुष्य के लिए संचय किए हैं। इसलिए, उनके नाम, रूप, गुण और लीला के सभी विवरणों को, उनके शब्दों में अनिवार्य रूप से निहित व्यावहारिक या भौतिक अवधारणाओं का त्याग करते हुए, उन्हें आध्यात्मिक रूप से स्वीकार किया जाना चाहिए।”

२. हरि के पास अनंत शक्तियां हैं

अनंत शक्तियों का अर्थ है ऐसी शक्तियाँ जो न अपने विस्तार की न समय की कोई सीमा जानती हैं। चूंकि ईश्वर की शक्तियों ने अकेले ही ब्रह्माण्ड और समय का निर्माण किया है, इसलिए उनकी शक्तियाँ उनके स्वयं के समान हैं। भौतिक जीवन में, एक व्यक्ति और उसकी शक्तियों के बीच, एक वस्तु और उसके गुणों,

उसके नाम, उसके रूप और उसके कार्यों के बीच अंतर होता है; लेकिन यह एक आध्यात्मिक सत्य है कि आत्मा के स्थल में व्यक्ति अपने नाम, रूप, गुणों और गतिविधियों के समान होता है। इस सत्य को मन्द तर्क के सतह के अंतर्गत नहीं लिया जा सकता है जो केवल स्थूल भौतिक वस्तुओं से संबंधित है। कृष्ण अपने आप में ही सर्वोच्च इच्छा-शक्ति हैं, और वे अपनी इच्छानुसार अपनी सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग करते हैं, जो किसी भी नियम-कानून के अधीन नहीं है, क्योंकि सभी नियम-कानून उनकी इच्छा और उनकी शक्ति से उत्पन्न होते हैं।

शक्ति को उसके उपयोग से जाना जाता है। इस संसार में हमें ईश्वर की शक्ति के केवल तीन गुणों का ही अनुभव है। हम भौतिक घटनाओं को देखते हैं और हम समझते हैं कि उनकी शक्ति में पदार्थ बनाने का गुण है। इस गुण को वेदों में माया-शक्ति के रूप में जाना जाता है। हम एक व्यक्ति को देखते हैं और हम समझते हैं कि सर्वोच्च शक्ति में सीमित और त्रुटि करने में सक्षम आत्माओं को उत्पन्न करने का गुण है। शास्त्र इस गुण को जीव-शक्ति कहते हैं। हम एक ऐसे व्यक्ति की कल्पना करते हैं जो सनातन आत्माओं के अपने दायरे में आध्यात्मिक और सर्वोच्च है; इस प्रकार, हम समझते हैं कि उनकी शक्ति में त्रुटिहीन संपूर्ण आध्यात्मिक अस्तित्व को प्रदर्शित करने की विशेषता है।

वेद उस गुण को आत्मा शक्ति या चित्त-शक्ति के नाम से पुकारते हैं। ये सभी गुण एक साथ एक सर्वोच्च शक्ति को दर्शाते हैं जिसे वेद परा-शक्ति कहते हैं। वास्तव में, शक्ति, परम पुरुष के व्यक्तित्व से अलग नहीं है। फिर भी, शक्तियों को अलग-अलग कार्यों में अलग-अलग तौर पर प्रदर्शित किया जाता है। यह अचिंत्य-भेदाभेद-प्रकाश या अचिन्त्य, एक साथ भिन्नता और अभिन्नता का अस्तित्व है। हरि, नियम-कानून से ऊपर परम इच्छा-शक्ति होने के नाते, अपनी अनंत शक्तियों का प्रयोग करते हैं, जबकि वे स्वयं इससे अप्रभावित रहते हैं। यह तर्क से समझा नहीं जा सकता, किन्तु , आत्मा में यह सहज सत्य के रूप में महसूस किया जाता है।

३. वे माधुर्य-मिठास के सागर हैं

रस को उस परमानंद सिद्धांत के रूप में परिभाषित किया गया है जिसमें स्थायी-भाव, विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और संचारी निहित हैं। विभाव को आलम्बन और उद्दीपन में विभाजित किया गया है। आलम्बन को विषय और आश्रय में विभाजित किया गया है। आश्रय वह व्यक्ति है जिसमें स्थायी-भाव का सिद्धांत देखा जाता है, और विषय वह व्यक्ति है जिसकी ओर स्थायी-भाव स्वयं को निर्देशित करता है। स्थायी-भाव को रति या शुद्ध आध्यात्मिक हृदय की प्रवृत्ति के रूप में समझाया गया है। आश्रय और विषय के संयोग से स्थायी-भाव क्रिया की अवस्था में पहुँच जाता है। जब यह अपनी सक्रिय अवस्था प्राप्त कर लेता है, तो व्यक्ति में कुछ लक्षण प्रदर्शित होते हैं जिन्हें अनुभाव कहा जाता है। ये संख्या में तेरह हैं। शरीर में प्रदर्शित आठ अन्य भावों को सात्विक-भावों के रूप में जाना जाता है जैसे कि आंसू, कांपना आदि। तैंतीस अन्य भाव, जैसे हर्ष, विशाद आदि को संचारी-भाव बताया गया है। आत्मा में संयुक्त रूप में इन्हें रस कहते हैं।

रस के अभिव्यक्त करने की यह प्रक्रिया विषय-वस्तुओं से मोहित व्यक्ति में रस के प्रदर्शन के अनुरूप है। लेकिन रस अपने आप में परम पुरुष, हरि के साथ पहचाने जाने वाला एक सनातन सिद्धांत है। हरि रस के सागर हैं, और मानव जीव में अधिक से अधिक इस सागर की एक बूंद की ही कल्पना की जा सकती है। रस स्वाभाविक रूप से आध्यात्मिक है, लेकिन जड़-पदार्थ के मूल तत्त्व – माया के अधीन व्यक्ति में, रस को भौतिक वस्तुओं के संबंध में मनुष्य के कामुक आनंद के साथ एक विकृत स्वरूप में पहचाना गया है। इस अवस्था में जीव अपने भौतिक मन में खो जाता है, और इन्द्रियों के माध्यम से कार्य करने वाला मन, पांचों इंद्रियों की पांच विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में रस के विकृत प्रतिबिंब का आनंद लेता है। यह आत्मा की अविद्या या आध्यात्मिक पहचान की अज्ञानता के कारण अपने स्वभाव से विपरीत दिशा की ओर जाना है। जब जीव अपने अंतरात्मा की ओर देखता है, तो उसे अपना आध्यात्मिक रस प्राप्त होता है, और विकृत रस आध्यात्मिक रस के विकास के अनुपात में समाप्त हो जाता है।

आध्यात्मिक रस में, जीव – एक दूसरे के साथ और सर्व-सुंदर भगवान के साथ - भौतिक समय और स्थान से ऊपर उठकर वृंदावन में अपनी मुक्त क्रीड़ा करते हैं। हरि, अपने अनंत सर्वोच्च स्वतंत्र इच्छा के साथ, अपनी आध्यात्मिक शक्ति या चित्त-शक्ति में शाश्वत परमानंद में रहते हैं। चित्त-शक्ति (आध्यात्मिक ज्ञान) का संवित गुण सभी भाव, संबंध और स्नेह को उत्पन्न करता है। चित्त-शक्ति का संधिनी गुण, सारे अस्तित्व (स्वतंत्र इच्छा के अलावा) के उत्पत्ति का स्रोत है, और इसी के द्वारा, धाम, व्यक्तित्व, एवं आध्यात्मिक रस की कार्यकलाप से संबंधित अन्य द्रवों का उत्पाद होता है। ये सभी चित्त-शक्ति या आध्यात्मिक शक्ति से प्रकाशित होते हैं।

मायिक या भौतिक जगत, साथ ही समय, स्थान और स्थूल वस्तुऐं का चित्त-जगत या आध्यात्मिक जगत में कोई स्थान नहीं है, जो वृंदावन के समान है। माया-शक्ति चित्त-शक्ति का विकृत प्रतिबिम्ब है। इसलिए, मायिक-जगत (भौतिक जगत) के गुण, चित्त-जगत (आध्यात्मिक ब्रह्मांड) के गुणों के आभास के समान हैं, लेकिन वे मूल रूप से समान नहीं हैं। चित्त-जगत, मायिक-जगत का मॉडल है, लेकिन वे समान नहीं हैं। हमें अपने आप को इस विचार से बचाना चाहिए कि मनुष्य ने मायिक-जगत के अनुभव से चित्त-जगत की कल्पना की है। यह विचार सर्वेश्वरवादी है, और इसे नास्तिक भी कहा जा सकता है। वह तर्क जिसमें आध्यात्मिक सिद्धांतों का विचार नहीं है, उनमें संदेह पैदा करने की प्रवृत्ति होती है, लेकिन जो आध्यात्मिक प्रेम का आनंद लेने की इच्छा रखते है, उन्हें इसे भ्रामक समझकर छोड़ देना चाहिए। कृष्ण का सनातन रस, चित्त-जगत में आध्यात्मिक रूप से विद्यमान है। हमारे लिए, जो एक सापेक्षिक या प्रासंगिक संसार में रहते हैं, एक आवरण है जो हमारी आंखों और कृष्ण लीला के महान आध्यात्मिक दृश्य के बीच हस्तक्षेप करती है। जब कृष्ण की कृपा से वह आवरण हट जाती है, तो हमें इस (वृंदावान लीला) को देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है, और जब भगवान उस आवरण को फिर सामने गिराते हैं तब दिव्य वृंदावन लीला ओझल हो जाती है। “इस विषय के आनंद की अनुभूति करें,

और आपका विश्वास मेरे जैसा ही होगा। भाइयों, उदार परीक्षण या अवलोकन किए बिना इतने महत्वपूर्ण विषय को मत छोड़ो!"

४. जीव उनका विभिन्न अंश है

जीव शब्द से वैदिक साहित्य सभी प्रकार की जीवों का उल्लेख करता है, चाहे वह पशु, मानव या दिव्य हो। हमें यह समझना चाहिए कि महाप्रभु ने आत्मा के देहांतरण (पुनर्जन्म) का अत्यंत ही उदार सिद्धांत बताया है। यद्यपि कुछ पाठक इस सिद्धांत को इस आधार पर अस्वीकार कर सकते हैं कि कुछ धर्मों में इस सिद्धांत का समर्थन नहीं है, फिर भी एक सिद्धांत को केवल इस आधार पर अस्वीकार करना उचित नहीं है कि कुछ मतों की हठ-धर्मिता से यह भिन्न है। वास्तव में, यह एक ऐसा विषय है, जिसमें तर्क-शक्ति हस्तक्षेप करने का साहस नहीं कर सकता। ईमानदारी से पूर्ण रूप से परखने पर, हमें देहांतरण (पुनर्जन्म) के सिद्धांत पर अविश्वास करने का कोई मजबूत आधार नहीं मिलता है। बल्कि, हमारा पक्षपात रहित मन इसे स्वीकार करने के लिए प्रवृत्त है।

यह अवधारणा कि एक मानव जीव को जीवन जीने का केवल एक ही अवसर प्राप्त है, यह स्पष्ट रूप से हठधर्मी, अन्यायपूर्ण और इस विश्वास के विपरीत है कि भगवान पूर्ण रूप से दयालु हैं। जब हमारी आध्यात्मिक भावनाएँ वैदिक निष्कर्षों का समर्थन करती हैं, जहां हमने सृष्टि के विभिन्न चरणों में आत्मा के निरंतर अस्तित्व का तथ्य सीखा है, तो हमें आत्मा के देहांतरण के सिद्धांत में अविश्वास करने का विचार छोड़ देना चाहिए। मनुष्य कितना भी शिक्षित और वैज्ञानिक क्यों न हो, वह हमेशा अनजाने में कुछ न कुछ गलती करने के योग्य होता है, और यह भी हो सकता है कि उस गलती का समर्थन एक पूरा संप्रदाय या राष्ट्र भी कर रहा हो।

चैतन्य महाप्रभु के अनुसार जीवात्मा ईश्वर का ही एक परमाण्विक भाग है। यह ईश्वर की शक्ति का ही हिस्सा है जो आध्यात्मिक सत्व वाले जीवात्माओं को उत्पन्न करती है, लेकिन जब वे भगवान के शाश्वत सेवक के रूप में अपनी मूल स्थिति को भूल

जाते हैं तब वे माया से मोहित होने के लायक बन जाते है। यहां भगवान की तुलना सूर्य से की जाती है, और जीवात्माओं को उस सूर्य की किरणों का परमाण्विक भाग कहा जाता है, जो यदि भगवान की शक्ति के एक अन्य गुण द्वारा संरक्षित ना हो, तो वे स्वतंत्र रूप से खड़े होने में असमर्थ हैं। शब्द "भाग" का अर्थ उस तरह नहीं है जैसे कि कुल्हाड़ी द्वारा एक पत्थर से काटे गए हिस्सों का वर्णन हो, परन्तु इसे इस उदाहरण से समझना है जैसे कि एक दीपक से दूसरे दीपक को जलाया जाता है, या जैसे कि एक रासायनिक पत्थर से सोना उत्पन्न किया जाता है।

आत्माओं की तुलना अग्नि की पृथक चिंगारियों से भी की जाती है। आत्मा की प्रत्येक इकाई में अपने स्रोत (भगवान) के गुणों का एक आनुपातिक हिस्सा निहित है, और फलस्वरूप आत्मा की इकाई में स्वतंत्र इच्छा का एक छोटा सा हिस्सा विद्यमान रहता है। स्वाभाविक रूप से ये आत्माएँ चित्त-जगत और मायिक-जगत के बीच स्थित हैं। जिन आत्माओं ने भगवान की सेवा करने का विकल्प चुना, वे भगवान की चित्त-शक्ति के ह्लादिनी गुण द्वारा मायिक-जगत में गिरने से सुरक्षित रहे, और उन्हें भगवान के विभिन्न प्रकार के नित्य सेवकों के रूप में स्वीकार किया गया। वे माया के कष्टों को और कर्म-चक्र या माया के कर्म और परिणाम के चक्र के सिद्धांतों को नहीं जानते हैं। जो भोग करना चाहते थे उन्हें मायिक-जगत से माया द्वारा पकड़ लिया गया। वे माया के कर्म-चक्र में फँसे हैं, और वे इस बंधन से तब मुक्त हो पाएंगे जब वे फिर से अपनी वास्तविक स्तिथि को भगवान के सेवकों के रूप में देखेंगे। ये जीवात्माएँ, चाहे वे माया के आकर्षण से मुक्त हों या उससे सम्मोहित हों, भगवान हरि पर आश्रित ये पृथक जीव इसके लिए स्वयं ही जिम्मेदार हैं।

भगवान हरि माया के स्वामी हैं; माया उन्हें प्रसन्न करने के लिए उनकी सेवा करती है। जीव की संरचना ही कुछ इस प्रकार है कि जब तक भगवान की ह्लादिनी शक्ति द्वारा उसे सहायता नहीं प्राप्त होती तब तक वह माया द्वारा सम्मोहित होने के लायक होता है। इस तरह, भगवान और जीव के बीच एक प्राकृतिक और अंतर्निहित अंतर है जिसे कोई भी पंथवादी पैंतरेबाज़ी तिकड़म से मिटा नहीं सकता।

कृपया इस भ्रामक प्रश्न से बचें, "इन जीवों को कब बनाया और सम्मोहित किया गया था?" आध्यात्मिक इतिहास में मायिक काल (समय) का कोई अस्तित्व नहीं है, क्योंकि इसकी शुरुआत जीवों के सम्मोहन के बाद हुई है और इसलिए, इस तरह के मामलों में मायिक कालक्रम का उपयोग नहीं किया जा सकता है।

५. माया द्वारा सम्मोहित जीव

प्रकृति, माया, प्रधान, प्रपञ्च और अविद्या एक ही सिद्धांत के विभिन्न चरणों और विशेषताओं के अनुसार अलग-अलग नाम हैं। माया, सर्वोपरि स्वरूप-शक्ति से अलग कोई स्वतंत्र शक्ति नहीं है। माया भी भगवान की एक भक्त ही है, जो भगवान के आदेशों को क्रियान्वित करते हुए भगवान की सेवा करती है एवं जो भगवान के प्रति अकृतज्ञ हैं, वह उन्हें सुधारने का कार्य करती है। माया भगवान के सुधार गृह की प्रभारी है, और उनकी शक्ति भगवान की सर्वोच्च शक्ति का प्रतिबिंब है। वे जीव, जिन्होंने अपनी स्वतंत्र इच्छा का दुरुपयोग किया और भूल गए कि वे भगवान के शाश्वत सेवक हैं, और स्वयं भोग करने का सोचते हैं, माया उनकी दंडात्मक पराधीनता और सुधार के लिए उन्हें अपने वश में कर लेती है।

माया के तीन गुण हैं – सत्व, रजस और तमस। ये गुण अकृतज्ञ आत्मा को बन्धन में बांधने के लिए जंजीरों के समान हैं। माया आत्मा के आध्यात्मिक रूप पर दोहरा आवरण लगाती है। आवरण का वर्णन लिंग और स्थूल शब्दों से किया गया है। मायिक अस्तित्व में चौबीस पदार्थ हैं। पांच तत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश), पांच गुण (ध्वनि, स्पर्श, दृष्टि, स्वाद और गंध), पांच ज्ञान-प्राप्ति इंद्रियां (आंख, कान, नाक, जीभ और त्वचा) , और पांच काम करने वाली इंद्रियां (हाथ, पैर, वाणी, जननांग, और निकासी के अंग) - ये बीस स्थूल या बाहरी आवरण बनाते हैं। मन, बुद्धि, दूषित चेतना, और मिथ्या अहंकार लिंग-देह या आंतरिक आवरण की रचना करते हैं। आत्मा के आध्यात्मिक रूप को घेरने के बाद, माया पतित जीवों को विभिन्न प्रकार के कार्यों में लगाती है। मायिक कार्य तीन कार्यकलाप – कर्म, अकर्म

और विकर्म से बना है। पारंपरिक रूप से अच्छे कार्य को कर्म की श्रेणी में रखा जाता है, जो पुण्य प्राप्त करने के लिए किया जाता है, जैसे कि स्मार्त वर्णाश्रम धर्म में निर्धारित अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते है। अपने निर्धारित कर्तव्यों का निर्वाह नहीं करना अकर्म है। पाप या अपराध को विकर्म कहते है। कर्म के फल-स्वरुप व्यक्ति को स्वर्ग लोक के सुख से लेकर ब्रह्मलोक तक की प्राप्ति होती है। अकर्म व्यक्ति को इस पृथ्वी लोक में वैमनस्य की स्थिति में बांधे रखता है, और विकर्म जीवों के नारकीय जीवन में पतन का कारण बनता है। पतित जीव अपने लिंग-देह के साथ एक शरीर से दूसरे शरीर की यात्रा के दौरान कर्म या विकर्म करते हुए स्वर्ग लोक तक की प्राप्ति करते हैं और अपने पुण्य कर्मों की समाप्ति पर फिर से निम्न लोक आते हैं, नर्क में गिर कर अपने विकर्मों, अर्थात् पाप के दंड को भुगतने के बाद फिर से कर्म के स्तर में ऊपर उठते हैं। इस प्रकार, पतित जीवों की स्थिति अत्यंत ही दयनीय या नारकीय होती है, क्योंकि वे कभी-कभी नरसंहार और हत्या का शिकार होते हैं और कभी-कभी राजकुमारों के रूप में आनंद लेते हैं। इस तरह यह भौतिक संसार, एक जेल या सुधार गृह है, आनंद के भोग का स्थान नहीं है, जैसा कि कुछ लोग दावा करते हैं।

६. माया मुक्त जीव

जीव अनादि काल से मायिक अस्तित्व के पथ पर यात्रा करते हुए सभी प्रकार के सुख और दुख का अनुभव करते रहे हैं। इस अप्रिय या कष्टदायक स्थिति से कोई कैसे मुक्त हो सकता है? धार्मिक कर्मकांड, कर्तव्यों का पालन, योग, शरीर और मन की शक्तियों का विकास, सांख्य (अनुभवजन्य दार्शनिक विश्लेषण), एक आध्यात्मिक प्राणी होने का सरल ज्ञान, और वैराग्य यानी संसार के सभी भोग का त्याग करना, वास्तव में जो हम प्राप्त करना चाहते है उसके लिए ये तरीके उचित नहीं है।

जब कोई व्यक्ति किसी वैष्णव के संपर्क में आता है जिसका हृदय हरि-भक्ति-रस से पिघल चूका है, तब उस व्यक्ति में भक्ति के मधुर सिद्धांत को आत्मसात करने की इच्छा जागृत हो सकती है, और भक्त के पावन पदचिह्नों पर चलते हुए वह निरंतर कृष्ण-भक्ति का अभ्यास कर सकता है। वह धीरे-धीरे अपनी मायिक या भौतिक स्थिति को मिटाता है, और अंत में, अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करने के बाद, सबसे मधुर शुद्ध रस का आनंद लेता है, जो कि आत्मा की अंतिम प्राप्ति है। सत्संग या आध्यात्मिक लोगों की संगति, जीवन के अंतिम उद्देश्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन है। भक्ति एक सिद्धांत है जो आत्मा से आत्मा के माध्यम से बहता है, जैसा की स्थूल पदार्थ में बिजली या चुंबकत्व का प्रसार होता है, भक्ति भी एक अनुकूल स्रोत से दूसरे में संचालित होती है। भक्ति का सिद्धांत शुद्धता एवं निष्ठा के साथ जीवन के हर एक कार्य में पूर्ण रूप से केवल भगवान पर निर्भर रहना है। कर्तव्य का सिद्धांत (कर्तव्य निर्वाह) भक्ति का हिस्सा नहीं है, क्योंकि यह प्राप्त किए गए एहसानों के लिए कृतज्ञता के आधार पर किया जाता है, और इसमें आभार शामिल है, जो स्वाभाविक प्रेम के विपरीत है।

इस नश्वर संसार में नैतिकता का सिद्धांत अच्छा है, लेकिन शायद ही इसके द्वारा अंत में आध्यात्मिक परिणाम प्राप्त होता है। भगवान की सर्वोच्च सुंदरता में विश्वास, उस परम ईश्वर की शाश्वत निःस्वार्थ सेवा की इच्छा, अपने भौतिक आनंद के हर दूसरे विचार या स्वार्थी आत्म-उन्नति से घृणा, ये तीन सिद्धांत हैं जो श्रद्धा को या भक्ति के लिए वास्तविक लालसा या तीव्र इच्छा को दर्शाते हैं। भक्ति स्वभाव से अनन्य है। तो क्या यह किस्मत है, जो भक्ति को लाती है? नहीं, अपनी सुकृति या पुण्य कर्म है जो इसकी मुख्य मार्मिक सिद्धांत है।

अच्छे कर्म दो प्रकार के होते हैं। एक वह जो नैतिकता पर आधारित है, इसमें उन कार्यों को शामिल किया गया है जो पुण्य और उन्नति लाते हैं। और दूसरा वह जिसमें आध्यात्मिक प्रगति लाने की प्रवृत्ति होती है। जो दूसरा प्रकार का कर्म या सुकृति है वह एक व्यक्ति को श्रद्धावान वैष्णव के संपर्क में लाता है, जिससे व्यक्ति

आध्यात्म में प्रारंभिक श्रद्धा या विश्वास के भाव को आत्मसात कर सकता है; और तब भक्ति प्राप्त करने में सक्षम होने पर, उस वैष्णव से भक्ति सेवा का बीज प्राप्त करता है, जो वास्तव में उस व्यक्ति का गुरु कहलाता है।

७. विविधता में एकता

सैद्धांतिक बहस पूर्ण रूप से व्यर्थ है। वेद कभी कहते हैं कि जीव भगवान से अलग है, और कभी कहते हैं की जीव भगवान के समान है। तथ्यात्मक रूप से, वेद सदैव सत्य कहते हैं। जीव एक साथ ईश्वर से अलग भी है और उनके समान भी है (अचिंत्य-भेदाभेद-प्रकाश)। एक तर्कवादी को यह बात समझ में नहीं आती है। इसलिए, यह अवश्य कहा जाना चाहिए कि भगवान अपने शक्तियों के प्रयोग में, मानव की समझ से परे, जीव और इस इस संसार से अलग है, और साथ ही उनसे समान भी हैं। वेदांत हमें शक्ति-परिणामवाद सिखाता है, न कि शंकराचार्य का त्रुटिपूर्ण विवर्तवाद। शंकराचार्य की शिक्षाओं को विभिन्न तरीकों से समझाया गया है। कुछ लोग कहते हैं कि संसार और जीव ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं, और अन्य यह स्थापित करते हैं कि जीव और संसार केवल भगवान की क्रमागत विकासात्मक स्थिति हैं। शंकराचार्य ब्रह्म-परिणाम (संसार में भगवान का रूपांतरण) से बचने के लिए, यह परिभाषित करते हैं कि श्रील व्यासदेव हमें विवर्तवाद सिखाते हैं—कि भगवान में कोई रूपांतरण नहीं होता है, बल्कि यह केवल माया है जो परमसत्य के एक भाग को ढ़क देती है, जैसे की एक बर्तन आकाश के छोटे से भाग को आवरित करती है; या यह कि ईश्वर अविद्या या अज्ञान पर प्रतिबिम्बित होते है, जबकि वास्तव में ईश्वर के अलावा और कुछ भी अभी तक अस्तित्व में नहीं आया है।

ये निरर्थक और जटिल तर्क हैं। यह स्पष्ट है कि वेदांत हमें सिखाते हैं कि ईश्वर अपरिवर्तनीय है और कभी भी परिवर्तन के अधीन नहीं है। उनकी शक्ति ही जीव और भौतिक जगत को अपने परिणाम (रूपांतरण) से बनाती है। उदाहरण के तौर पर पारस पत्थर का गुणात्मक प्रभाव सोने के रूप में उत्पन्न होता है जबकि पत्थर

अपरिवर्तित रहता है। इस प्रकार चित्त-शक्ति, चित्त-जगत के रूप में अनन्त रस की अपनी सभी विशेषताओं के साथ प्रकट होती है, और जीव-शक्ति असंख्य जीवों के रूप में प्रकट होती है, कुछ वैकुंठ में परिषदों के रूप में रहते हैं, और अन्य इस संसार में अलग परिस्थितियों में विभिन्न आकृतियां और रूप लिए भ्रमण करते हैं। माया-शक्ति पतित आत्माओं के निवास और मनोरंजन के लिए अनेक लोकों का निर्माण करती है।

विवर्तवाद निस्संदेह एक त्रुटि है, और वेदों की शिक्षाओं के बिलकुल विपरीत है, जबकि केवल शक्ति-परिणामवाद ही सत्य है और यह इस तथ्य का समर्थन करता है कि आध्यात्मिक प्रेम शाश्वत है। यदि विवर्तवाद सत्य होता, तो इसका स्वाभाविक परिणाम आध्यात्मिक प्रेम को एक अस्थायी सिद्धांत घोषित कर देता।

८. भक्ति ही एकमात्र साधन है

केवल कर्म ही प्रत्यक्ष और तत्काल आध्यात्मिक फल नहीं दे सकता। जब वह देता है, तो वह भक्ति के माध्यम से देता है। इसलिए, भक्ति स्वतंत्र है, और कर्म एवं ज्ञान आश्रित सिद्धांत हैं। यह ज्ञान कि मनुष्य एक आध्यात्मिक प्राणी है, केवल इसके द्वारा अंतिम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते। जब ज्ञान से यह प्राप्त होता है, तो वह भक्ति के सहयोग से ही प्राप्त होता है। इसलिए, परम लक्ष्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन भक्ति है। भक्ति के द्वारा हम अपने आप में कृष्ण के लिए प्रेम-भाव जागृत करते हैं, जो अन्य सभी इच्छाओं से मुक्त है पर केवल भक्ति भाव में प्रगति की इच्छा को छोड़कर, जो कर्म और ज्ञान आदि जैसे अन्य अवयवों से मुक्त है। हम यह देखते है की भक्ति स्वयं एक भाव और क्रिया दोनों ही है। भक्ति के तीन चरण हैं – साधन-भक्ति, भाव-भक्ति और प्रेम-भक्ति। साधन-भक्ति उस स्तिथि की अवस्था है जिसमें अभी तक कृष्ण के प्रति प्रेम-भाव जागृत नहीं हुआ है। भाव-भक्ति में भाव जागृत होता है, और प्रेम-भक्ति में यह भाव पूर्णतः क्रियाशील हो जाता है। भक्ति प्रेम के आध्यात्मिक प्रयोजन के प्रति आध्यात्मिक भाव है।

साधन-भक्ति दो प्रकार के होते हैं – एक वैधि-साधन-भक्ति और दूसरी रागानुगा-साधन-भक्ति कहलाती है। "वैधि" शब्द "विधि," या "नियम" से बना है। शास्त्रों के नियम से वैधि-भक्ति जागृत की जाती है, जबकि रागानुगा-भक्ति में व्यक्ति स्वाभाविक रूप से कृष्ण से प्रेम करता है, और हृदय में भगवान की सेवा करने की तीव्र इच्छा होती है। जो इस प्रक्रिया की सुंदरता से आकर्षित होता है, वह जल्दी ही कृष्ण के लिए अपनी भाव को विकसित करने में सक्षम हो जाता है; लेकिन दोनों में, रागानुगा-भक्ति, वैधि-भक्ति से अधिक प्रबल है। कृष्ण के लिए स्नेह-भाव को नौ अलग-अलग तरीकों से विकसित किया जाता है—

१. कृष्ण के आध्यात्मिक नाम, रूप, गुण और लीला का श्रवण।

२. उन सभी की महिमा का कथन एवं कीर्तन करना।

३. उन सभी का ध्यान और उनका स्मरण करना।

४. कृष्ण के पवित्र चरणों की सेवा करना।

५. पूजा करना।

६. नमस्कार करना।

७. वह सब करना जो कृष्ण को भाता है।

८. कृष्ण के प्रति स्नेह-भाव (सख्य) विकसित करना।

९. उनके प्रति पूर्ण समर्पण करना।

इन सभी प्रक्रियाओं में कृष्ण के नामों का कीर्तन करना सबसे उत्तम है।

भक्ति के इन सभी विधी (प्रक्रिया) में विनम्र ज्ञान का होना आवश्यक है, और व्यर्थ चर्चा से बचना चाहिए। कुछ ऐसे हैं जो श्रीमूर्ति (कृष्ण का मूर्ति रूप) की पूजा करने के विचार का विरोध करते हैं। वे कहते हैं, "श्रीमूर्ति की पूजा करना प्रतिमा पूजा है। श्रीमूर्ति एक कलाकार द्वारा बनाई गई प्रतिमा है और स्वयं शैतान के अलावा

किसी और ने इसकी शुरुआत नहीं की है। ऐसी वस्तु की पूजा करने से भगवान में ईर्ष्या पैदा होगी और उनकी सर्वशक्तिमानता, सर्वज्ञता और सर्वव्यापीता सीमित हो जाएगी!"

इसका हम यह उत्तर देते हैं की, "भाइयों! स्पष्ट रूप से इस प्रश्न को समझें और अपने आप को सांप्रदायिक हठधर्मिता से गुमराह न होने दें। ईश्वर ईर्ष्या नहीं करते हैं, क्योंकि वे अद्वितीय हैं। शैतान कोई और नहीं बल्कि काल्पनिक वस्तु या रूपक का विषय है। एक रूपक या काल्पनिक प्राणी को भक्ति में बाधा के रूप में प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए।

"जो लोग ईश्वर को अवैयक्तिक मानते हैं, वे उन्हें प्रकृति में किसी शक्ति या विशेषता के रूप में पहचानते हैं, जबकि वास्तव में वे प्रकृति, प्रकृति के नियमों एवं कानूनों से ऊपर हैं। उनकी पावन इच्छा ही कानून है, और उन गुणों के साथ उनकी पहचान करना जो निर्मित वस्तुओं जैसे समय, स्थान आदि में मौजूद हैं, यह उनकी असीमित उत्कृष्टता को सीमित करके उनके दिव्य गुणों का अनादर करने के समान होगा। उनकी उत्कृष्टता उनके अलौकिक स्वयं द्वारा शासित परस्पर विरोधी शक्तियों और विशेषताओं में निहित है।

"वे अपने सर्व-सुंदर रूप के समान हैं, जिसमें सर्वव्यापकता, सर्वज्ञता, और सर्वशक्तिमान जैसी शक्तियां हैं, जो कहीं अन्यत्र नहीं देखी जा सकती। उनका दिव्य स्वरूप और परिपूर्ण व्यक्तित्व आध्यात्मिक जगत में शाश्वत रूप से मौजूद है, और साथ ही साथ प्रत्येक निर्मित वस्तु और स्थान में वे अपनी संपूर्णता में अवस्थित हैं। यह सिद्धांत श्रीमूर्ति के अन्य सभी सिद्धांत से श्रेष्ठ है। महाप्रभु प्रतिमा पूजा का अस्वीकार करते हैं, लेकिन श्रीमूर्ति की पूजा को आध्यात्मिक संस्कृति का एकमात्र अपरिहार्य साधन मानते हैं।

"यह दिखाया गया है कि भगवान व्यक्तिगत है और सर्व-सुंदर हैं। व्यासदेव और उनके जैसे अन्य ऋषियों ने अपनी आत्मा की आंखों से उस सुंदरता को देखा है और हमारे लिए वे उनका विवरण छोड़ गए हैं। बेशक, शब्दों में भौतिक पदार्थ

की स्थूलता तो होती है। लेकिन उन विवरणों में सत्य अभी भी बोधगम्य है। उन विवरणों के अनुसार, व्यक्ति एक श्रीमूर्ति को चित्रित करता है और अपने हृदय के परमेश्वर को गहन आनंद के साथ देखता है। भाइयों! क्या यह गलत या पाप है?

“जो लोग कहते हैं कि भगवान का कोई रूप नहीं है, न तो भौतिक या आध्यात्मिक, और साथ ही पूजा के लिए एक मिथ्या रूप की कल्पना करते हैं, निश्चित रूप से प्रतिमा पूजक हैं। लेकिन जो लोग अपनी आत्मा की आंखों में भगवान के आध्यात्मिक रूप को देखते हैं, और जहां तक संभव हो उस अवधारणा को मन तक ले जाते हैं, जहां वे अपनी भौतिक आंखों की संतुष्टि के लिए, उच्चतम भाव के निरंतर अध्ययन के लिए एक प्रतीक तैयार करते हैं, वे किसी भी रूप में प्रतिमा पूजक नहीं हो सकते। श्रीमूर्ति का दर्शन करते समय केवल उसकी छवि को न देखें, बल्कि छवि का आध्यात्मिक आदर्श देखें और तब आप एक शुद्ध आस्तिक कहलाएंगे। प्रतिमा पूजा और श्रीमूर्ति पूजा दो अलग-अलग चीजें हैं! लेकिन मेरे भाइयों, आप बस जल्दबाज़ी में दोनों को एक समझ कर भ्रमित हो रहे हैं।

“अगर मैं यथार्थ सत्य बताऊँ तो श्रीमूर्ति की पूजा ही भगवान की वास्तविक पूजा है, जिसके बिना आप अपनी धार्मिक भावनाओं को पर्याप्त रूप से विकसित नहीं कर सकते हैं। यह भौतिक जगत आपको अपने इंद्रियों के माध्यम से आकर्षित करता है, और जब तक आप भगवान को इंद्रियों के विषयों में नहीं देखते हैं, तो होश में रहते हुए भी, आप एक अजीब स्थिति में रहते हैं, जो आपकी आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करने में शायद ही आपकी मदद करता है। अपने घर में एक श्रीमूर्ति रखें। यह सोचें कि सर्वशक्तिमान ईश्वर ही घर के संरक्षक हैं। उन्हें भोग लगाएं और उनके प्रसाद (कृपा) को ग्रहण करें। उन्हें फूल और सुगंध भी अर्पित करें और उसे प्रसाद के रूप में स्वीकार करें। आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ सभी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। जब आप इसे अपने शुद्ध हृदय से करते हैं तो भगवान इसे समझते हैं और वे आपकी निष्कपटता और सेवा-भाव के अनुसार आपको परखते हैं। इस मामले में शैतान का आपसे कोई लेना-देना नहीं होगा!

"सभी प्रकार की पूजा श्रीमूर्ति के सिद्धांत पर आधारित है। धर्म के इतिहास में देखें और आप इस उत्कृष्ट सत्य को पाएंगे। यहूदी धर्म के पूर्व-ईसाई काल और उसके बाद ईसाई धर्म की अवधि में पितृसत्तात्मक ईश्वर का सामी विचार, और इस्लाम, श्रीमूर्ति के एक सीमित विचार के अलावा और कुछ नहीं है। यूनानियों के बीच एक जौव और आर्य कर्म-कांडियों के बीच एक इंद्र का राजशाही विचार भी उसी सिद्धांत का एक दूर का दृष्टिकोण है। ध्यानियों में एक शक्ति और ज्योतिर्मय ब्रह्म का विचार और शाक्तों की एक निराकार ऊर्जा का विचार भी श्रीमूर्ति का एक बहुत ही कमजोर दृश्य है।

"वास्तव में, श्रीमूर्ति का सिद्धांत अलग-अलग लोगों में विचार के विभिन्न चरणों के अनुसार अलग-अलग तरीके से प्रदर्शित किया गया सत्य है। यहां तक कि जैमिनी और कॉम्टे, जो सृष्टि-कर्ता भगवान का स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं, उन्होंने भी श्रीमूर्ति के कुछ पहलुओं पर ध्यान केंद्रित करने का सुझाव दिया है, केवल इसलिए कि वे आत्मा से किसी आंतरिक क्रिया से प्रेरित हुए हैं! और निश्चित रूप से, हम ऐसे लोगों से मिलते हैं जिन्होंने श्रीमूर्ति के आंतरिक विचार के संकेतक के रूप में क्रॉस, शालिग्राम-शिला, शिव-लिंगम और ऐसे अन्य प्रतीकों को अपनाया है।

"और तो और, यदि दिव्य कृपा, प्रेम, तथा न्याय को पेन्सिल द्वारा चित्रित और टाँकी द्वारा प्रकटित किया जा सकता है, तो भगवान की व्यक्तिगत सुंदरता को कविताओं या तस्वीरों में चित्रित, या टाँकी द्वारा प्रकटित, मानवजाति के हित के लिए क्यों नहीं किया जा सकता? यदि शब्द विचारों पर प्रभावशाली हैं, एक घड़ी समय दिखा सकती है, और एक चिह्न इतिहास बता सकता है, तो एक तस्वीर या मूर्ति, भगवान की दिव्य सुंदरता से संबंधी ऊँचे विचारों और भावनाओं का संपर्क क्यों नहीं दे सकती?"

श्रीमूर्ति के उपासक दो वर्गों में विभाजित हैं — आदर्शवादी और भौतिकवादी। भौतिकवादी संप्रदाय वाले अपने जीवन की परिस्थितियों और मन की स्थिति के कारण मंदिर संस्थानों की स्थापना के लिए बाध्य हैं। जो लोग परिस्थितियों

और अपने पद के कारण मन के भीतर श्रीमूर्ति की पूजा करने के अधिकारी हैं, मंदिर संस्थानों के प्रति सम्मान के साथ उनमें आमतौर पर श्रवण और कीर्तन द्वारा पूजा करने की प्रवृत्ति होती है, और उनकी संस्था सार्वभौमिक तथा जाति या रंग के विचारों से स्वतंत्र होती है। महाप्रभु ने इस बाद के वर्ग को प्राथमिकता दी, और अपने शिक्षाष्टकम् में उनकी आराधना का उदाहरण दिया। फिर बिना किसी रुकावट के समर्पण भाव में आराधना करें, और बहुत ही कम समय में आपको प्रेम की कृपा प्राप्त होगी।

९. कृष्ण प्रेम ही अंतिम लक्ष्य है

कर्म-मार्गी यह कहते हैं कि इस संसार में आनंद और उसके बाद स्वर्ग में, यही सब कुछ है जो एक आदमी को चाहिए। कर्म या कार्य, दो प्रकार के होते हैं—भौतिक परिणाम प्राप्त करने की दृष्टि से किए गए कर्म, और भगवान को प्रसन्न करने के लिए किए गए कर्म। कर्म-मार्गियों के लिए, दोनों प्रकार के कर्मों का उद्देश्य भोग प्राप्त करना है। केवल भौतिक भोग के लिए भगवान की पूजा की जाती है। यही भक्ति और कर्म के बीच की सीमांकन रेखा है। भक्ति का उद्देश्य सभी कार्यों के अंतिम परिणाम के रूप में भगवान की प्रीति या प्रेम को प्राप्त करना है, जबकि कार्य का उद्देश्य अपने स्वार्थी आनंद को कर्म के अंतिम लक्ष्य के रूप में प्राप्त करना है।

दूसरी ओर, ज्ञान-मार्गी, अपनी साधना के अंतिम उद्देश्य के रूप में मुक्ति या मोक्ष प्राप्त करने के लिए ज्ञान या आध्यात्मिक ज्ञान अर्जन करते हैं। मुक्ति दो प्रकार की होती है। एक वह मुक्ति जिसमें आत्मा का ईश्वर में पूर्ण अवशोषण होता है, जहां आत्मा का ईश्वर से अलग अस्तित्व का अंत हो जाता है। इसे सायुज्य के नाम से जाना जाता है। और दूसरी तरह की मुक्ति में आत्मा ईश्वर से शाश्वत रूप से अलग रहता है, और जब मोक्ष प्राप्त होता है, तो आत्मा आध्यात्मिक जगत में जाता है और इन में से किसी एक स्थिति को प्राप्त करता है—“सालोक्य” अर्थात भगवान के धाम में निवास करना; “सामीप्य” या भगवान के साथ निकट संबंध में स्थापित

होना; "सारुप्य" या भगवान की तरह आध्यात्मिक रूप की प्राप्ति; या "सार्ष्टि" या ईश्वर की शक्तियों के समान शक्तियों की प्राप्ति।

दूसरी प्रकार की मुक्ति वर्ग अपरिहार्य है जब सर्वशक्तिमान ईश्वर हमसे प्रसन्न होकर उसे प्रदान करते हैं। लेकिन इस मुक्ति को प्राप्त करने के बाद, हम प्रीति या शुद्ध प्रेम से भगवान की सेवा करते हैं। पहली प्रकार की मुक्ति में ईश्वर प्रेम के सर्वोपरि सिद्धांत को रद्द करने की प्रवृत्ति के कारण, भक्त उसे बेकार मानकर अस्वीकार कर देते हैं। दूसरी प्रकार की मुक्ति भी हमारा अंतिम उद्देश्य नहीं हो सकता, क्योंकि यह आत्मा की मध्यवर्ती स्थिति जैसे कार्य करता है, जिसमें प्रीति सर्वोपरि रूप में विद्यमान रहता है। इस प्रकार मुक्ति को हमारे आध्यात्मिक विरक्ति के मध्यवर्ती परिणाम के रूप में माना जाना चाहिए।

इसके अलावा, मुक्ति के लिए लालसा आध्यात्मिक साधना की प्रक्रिया को दूषित कर देती है, क्योंकि यह हमारे भक्ति में उन्नति की इच्छा के बदले किसी अन्य चीज की तीव्र इच्छा है। इसलिए हमें हमेशा दो विरोधी शक्तियों— भुक्ति या स्वार्थी भोग की इच्छा, और मुक्ति या मोक्ष की इच्छा से मुक्त होकर, भक्ति पथ पर उन्नति के लिए साधना करनी चाहिए। हमें इस बात के लिए कृष्ण पर निर्भर रहना चाहिए कि वे हमें मुक्ति दें या नहीं, जैसी उनकी इच्छा। हमें अपनी धार्मिक भावना के निरंतर विकास के लिए उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। केवल भक्ति, प्रीति या शुद्ध प्रेम के साथ, हमारे अस्तित्व का अंतिम उद्देश्य है।

जब रति (लगाव) उल्लास (उत्साह) के साथ मिश्रित होता है तब वह प्रीति बन जाता है। प्रीति कृष्ण के लिए एक अनन्य व उत्साहपूर्ण प्रेम उत्पन्न करती है, और कृष्ण एवं उनके परिकरों के अलावा अन्य सभी वस्तुओं और व्यक्तियों पर घृणा उत्पन्न करती है। जब प्रीति के साथ यह विचार जोड़ा जाता है कि, "कृष्ण मेरे हैं," तो वह प्रेम का रूप धारण करती है। यहां पर इस धारणा का प्रारंभ होता है कि "कृष्ण मेरे अपने स्वामि हैं और मैं उनका दास हूँ।" प्रेम के साथ विश्वास जोड़ें तो वह प्रणय का रूप लेती है जहां से कृष्ण के साथ सख्य के संबंध का उदय होता है।

प्रणय में आदर का विचार नहीं रहता है। प्रणय में यह धारणा कि "कृष्ण मेरे प्रेम के एकमात्र और सबसे प्रिय वस्तु हैं," वह अनोखे ढंग से मान में बदल जाता है। सर्वशक्तिमान कृष्ण इस भाव के समक्ष एक तरह से अपनी अधीनता दिखाते हैं।

हृदय के अत्याधिक रूप से पिघल जाने पर, प्रेम स्नेह में बदल जाता है। यहां पर कृष्ण और उनके भक्त के बीच पुत्र और माता-पिता के संबंध का बोध होता है। इस अवस्था में, कृष्ण के लिए रोना, मिलन के तृप्ति की इच्छा और कृष्ण के हितों की रक्षा करने की इच्छा स्वाभाविक रूप से होती है। इसके बाद, स्नेह में तीव्र इच्छा की वृद्धि से राग उत्पन्न होता है। इस अवस्था में एक क्षण का अलगाव भी असहनीय हो जाता है। यहीं से कृष्ण और उनके भक्त के बीच पति-पत्नी का आध्यात्मिक रिश्ता शुरू होता है। मुलाकात के अभाव में उपस्थित होने वाला कष्ट ही आनंद होता है। राग, अपने अभिप्राय को हर क्षण नया एवं हर क्षण में स्वयं को नया देखकर अनुराग में परिवर्तित हो जाता है। इस अवस्था में पारस्परिक अधीनता और प्रेमी को हर जगह साथ देने की तीव्र इच्छा इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। अनुराग, असीम रूप से आश्चर्यजनक अवस्था में उठकर, मानो पागलपन की ओर बढ़ते हुए, महाभाव बन जाता है। यह अवर्णनीय है! रति से लेकर महाभाव तक, यह संपूर्ण सिद्धांत ही स्थायीभाव है, जो शाश्वत परमानंद है।

मानव जीवन में इस महान रस की एक विकृत तस्वीर है, क्योंकि माया के राज्य में हमारा जीवन आध्यात्मिक जीवन का एक विकृत प्रतिबिंब है। जब आत्मा केवल अपने उचित उद्देश्य, सर्वोच्च भगवान कृष्ण के लिए कार्य करता है, तो रस शुद्ध होता है; जब मन और इंद्रियां किसी गलत वस्तु की ओर कार्य करते हैं, तो रस विकृत और शोचनीय हो जाता है। विकृत रस हमें महान आध्यात्मिक रस के स्वभाव के बारे में मात्र एक संकेत देता है; इसलिए शब्दों के द्वारा इन विवरणों को देने का प्रयास किया गया है जिनका उपयोग विकृत रस के लक्षण का वर्णन करने के लिए भी किया जा सकता है। हम अपने पाठकों से आत्मा और भौतिक वस्तु के बीच में अंतर का अच्छा ध्यान रखने के लिए कहते हैं, अन्यथा एक गलतफहमी अपरिहार्य है।

जो सच्चे मन से श्रीमद्भागवत में वर्णित कृष्ण के नाम, रूप, गुण और लीला का अध्ययन ऐसे साधु की संगति में करते हैं जिसने आत्मतत्त्व को साक्षात रूप में समझा है, वह भक्ति के प्रभाव से ऊँचा और ऊँचा उठेंगे। जो हर चीज को शैक्षणिक तरीके से विश्लेषण करने में सक्षम है, वह शायद ही आत्मा के मामलों में सच्चाई को प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि ईश्वर के नियम के अनुसार, अपनी वर्तमान स्थिति में तर्क कभी भी आत्मा के क्षेत्र तक नहीं पहुंच सकता है।

जहाँ तक हमने कहा है, वहाँ तक जाने का अवसर पाने के लिए, व्यक्ति को हृदय से और अनुसंधान करना चाहिए, और तब सर्व-सुंदर भगवान उसे आत्मतत्त्व को साक्षात समझने और उसके दायरे में प्रवेश करने में मदद करेंगे। लेकिन जब तक मन भौतिक आकर्षणों से भ्रमित रहता है, तब तक विभिन्न रूपों में विषयवस्तु से ऊपर उठने का कोई उपाय नहीं है। अधिकांश पश्चिमी दार्शनिकों ने जो सबसे बड़ी गलती की है वह है मन और विकृत अहंकार को ही आत्मा कहकर पहचानना। यह अत्यन्त ही दुर्भाग्यपूर्ण है।

संक्षेप में, मनुष्य की अपनी वर्तमान स्थिति में उसके तीन अलग-अलग सिद्धांत हैं —

(१) स्थूल सिद्धांत, या उसके शरीर की रचना करने वाला स्थूल पदार्थ;

(२) लिंग सिद्धांत, या परिशुद्ध पदार्थ जो मन, बुद्धि, दूषित चेतना, और विकृत अहंकार के रूप में प्रकट होता है, जिससे व्यक्ति भौतिक संसार में भ्रमित हो जाता है। यह स्थिति माया, या मायावी ऊर्जा के प्रभाव के कारण है, जिसका उद्देश्य आत्मा को भगवान के सेवक होने की अपनी असली स्वभाव के विपरीत भोग करने के गलत इरादे को ठीक करना है।

(३) मनुष्य वास्तव में माया और उसके संबंध से पूरी तरह से स्वतंत्र है। वर्तमान कष्ट से छुटकारा पाने का एकमात्र तरीका है सच्चे भक्त से शुद्ध भक्ति का ग्रहण करना। भक्ति, एक साधन के रूप में, मनुष्य को, कृष्ण के सर्व-सुंदर धाम तक ले जाती है, और फिर, अंतिम परिणाम के रूप में शाश्वत कृष्ण-प्रेम द्वारा उसे बनाए रखती है।

इस मायिक-जगत में होने पर, मनुष्य को आत्मा के उत्थान का उद्देश्य अपनाकर शांति पूर्वक रहना चाहिए। इस समाज में उसे एक शुद्ध जीवन जीना चाहिए, पापों से बचना चाहिए, और जितना हो सके अपने साथियों के लिए अच्छा करना चाहिए। उसे विनम्र होना चाहिए, और जीवन की कठिनाइयों को वीरता से सहन करना चाहिए। उसे किसी भी गुण या भव्यता का घमंड नहीं करना चाहिए, और उसे सभी के साथ सम्मानपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। एक शांतिपूर्ण और सदाचारी जीवन की दृष्टि से और भगवान के सेवकों को जन्म देने के इरादे से एक वैष्णव के लिए विवाह एक अच्छी व्यवस्था है। आध्यात्मिक साधना ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है। वह सब कुछ करें जो इस उद्देश्य में सहायक हो और ऐसा कुछ भी न करें जो आत्मा की साधना में अड़चन पैदा करें।

यह दृढ़ विश्वास रखें कि केवल कृष्ण ही आपकी रक्षा कर सकते हैं। उन्हें ही अपने एकमात्र संरक्षक के रूप में स्वीकार करें। वह सब कुछ आप करें जो कृष्ण चाहते हैं, और कभी भी कृष्ण की पावन इच्छा से स्वतंत्र होकर कुछ भी न करें। आप जो भी करें विनम्रता से करें। आप यह हमेशा याद रखें कि आप इस संसार में परदेशी हैं, और अपने घर लौटने के लिए तैयार रहें। अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन करें और कृष्ण प्रीति को जीवन के सर्वोत्तम लक्ष्य के रूप में प्राप्त करने के लिए भक्ति को साधन मानकर उसका अनुशीलन करें। अपने तन, मन और आत्मा को भगवान की सेवा में लगाएं। अपने सभी कार्यों में, अपने सर्वोपरि भगवान की उपासना करें।

समापन टिप्पणी

इस प्रकार हमने श्रीमन महाप्रभु के जीवन और उपदेशों का सारांश प्रस्तुत किया है। इसके द्वारा हमारे विनम्र पाठक यह जान पाएंगे कि चैतन्य महाप्रभु ने शुद्ध एकेश्वरवाद का प्रचार किया और प्रतिमा-पूजन (idolatry) को खदेड़ दिया। उन्होंने हमें सिखाया कि प्रतिमा-पूजन (idolatry) उन चीजों और व्यक्तियों की पूजा है जो स्वयं भगवान नहीं हैं। जब बनारस के संन्यासियों ने उन्हें सर्वशक्तिमान ईश्वर के रूप में संबोधित किया, तो महाप्रभु ने उन्हें बताया कि किसी जीव को भगवान के रूप में संबोधित करना सबसे बड़ा पाप है। और उन्होंने कई बार भगवान की सच्ची छवि (जिसके बाद मनुष्य बनाए गए थे) के अलावा अन्य छवि की पूजा की निंदा की है। भगवान अद्वितीय हैं। "उनके साथ कोई भी प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकता है" ये महाप्रभु के धर्म का आदर्श वाक्य है।

साथ ही, महाप्रभु ने अपने चरित्र और उपदेश दोनों में, शुद्धतम नैतिकता को आध्यात्मिक सुधार के सहायक के रूप में दिखाया। नैतिकता, निश्चित रूप से, एक भक्त के चरित्र की शोभा को बढ़ाता है। स्वयं को कृष्ण भक्त के रूप में प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति के चरित्र में यदि यह नहीं देखा जाता है, तो उसकी नेकनीयती पर संदेह किया जा सकता है।

सिद्धांत के चार वर्ग हैं — नास्तिक, सर्वेश्वरवादी, अज्ञेयवादी और आस्तिक। चैतन्य का धर्म पहले तीन को धर्म के विरोधी के रूप में खारिज करता है। वे केवल शुद्ध आस्तिकता का उपदेश देते हैं और लोगों को बाकी तीन सिद्धांतों से दूर रहने की सलाह देते हैं।

उन्होंने यह उपदेश दिया कि वर्णाश्रम-धर्म, जाति व्यवस्था सहित, समाज में मनुष्य का भला करने के लिए, ऋषियों द्वारा शुरू की गई एक सामाजिक संस्था है। भक्तों को ऐसी सामाजिक व्यवस्था का तब तक पालन करने की अनुमति दी जानी चाहिए जब तक की ये व्यवस्था आध्यात्मिक विकास में अड़चन न बनें। रामानंद राय के पास आध्यात्मिकता के लिए प्रद्युम्न मिश्रा, एक कठोर ब्राह्मण को भेजकर, महाप्रभु ने दिखाया है कि जो कृष्ण-तत्त्व को जानता है, वह गुरु हो सकता है, चाहे वह शूद्र हो, ब्राह्मण हो, या संन्यासी हो।

महाप्रभु ने यह प्रचारित किया की आध्यात्मिक तृप्ति के आनंद में सभी लोग समान हैं। उन्होंने उपदेश दिया कि मानवीय विचारों को कभी भी सांप्रदायिक विचारों के बंधन में बंधने नहीं देना चाहिए। उन्होंने लोगों के बीच सार्वभौमिक बंधुत्व और वैष्णवों के बीच विशेष भाईचारे का प्रचार किया, जो उनके अनुसार, आध्यात्मिक उन्नति के सर्वश्रेष्ठ अग्रदूत हैं। वे हमें बताते हैं कि व्यक्ति को दूसरों के साथ उचित व्यवहार करके उपयुक्त तरीके से धन अर्जित करना चाहिए और कभी अनैतिक रूप से इसे प्राप्त नहीं करना चाहिए। जब रामानंद राय के भाइयों में से एक, गोपीनाथ पट्टनायक को अनैतिक लाभ के लिए राजा द्वारा दंडित किया जा रहा था, तब भगवान चैतन्य ने अपने सभी अनुयायियों को अपने सांसारिक जीवन में सदाचार-पूर्ण व्यवहार करने के लिए आग्रह किया।

अपने प्रारंभिक जीवन में, महाप्रभु ने गृहस्थों को जरूरतमंदों और असहायों को हर तरह की सहायता करना सिखाया, और उन्होंने यह बताया कि जिनके पास सहायता करने की क्षमता है, उन्हें आवश्यक रूप से लोगों को शिक्षित करने में सहायता देनी चाहिए, विशेषकर ब्राह्मणों को, जिनसे मानव ज्ञान के उच्च विषयों का अध्ययन करने की अपेक्षा की जाती है।

श्री चैतन्यदेव ने एक शिक्षक के रूप में लोगों को उपदेशों के माध्यम से एवं अपने धार्मिक जीवन द्वारा, दोनों से शिक्षा दी है। उनके जीवन में शायद ही कोई ऐसी बात है जो आलोचना का विषय बन सके। उनका संन्यास लेना, छोटा-हरिदास के

साथ उनका गंभीर व्यवहार, और ऐसे अन्य कुछ कार्यकलापों को कुछ लोगों द्वारा अनुचित माना गया है, लेकिन हम मानते हैं कि उन लोगों ने जल्दबाज़ी में या अलग पंथ में होने के कारण यह निष्कर्ष निकाला है। महाप्रभु अपने संकल्पों के निष्पादन में एक अविचलित नायक थे; वे सब के साथ मिलनसार थे, फिर भी अपने कर्तव्यों के निर्वहन में हमेशा डटे रहते।

एक बार, महाप्रभु के संन्यास-गुरु केशव भारती के गुरु-भाई, ब्रह्मानंद भारती, बाघ की खाल पहनकर उनसे मिलने आए। महाप्रभु ने उन्हें तब तक प्रणाम नहीं किया जब तक कि उन्होंने बाघ की खाल को त्याग कर सूती का कपड़ा नहीं पहना। उन्होंने कहा, "मेरे सामने वाले सज्जन भारती नहीं है। यह कैसे हो सकता है कि मेरे गुरु के समान व्यक्ति एक जानवर की खाल पहने हुए हो? संन्यासी अपने निजी इस्तेमाल के लिए जानवरों की हत्या का समर्थन नहीं कर सकते।" भारती समझ गए कि महाप्रभु को यह पसंद नहीं है, और उन्होंने अपना परिधान बदल लिया। तब भगवान चैतन्य ने अपने गुरु के गुरु-भाई के प्रति उचित सम्मान दिखाते हुए उन्हें प्रणाम किया।

एक बार, वल्लभ भट्ट (महान ख्याति के विद्वान) ने श्रीमद्-भागवतम पर एक टिप्पणी लिखी जिसे उन्होंने उच्च कोटि का समझा और महाप्रभु को यह कहते हुए दिखाया कि वे श्रीधर स्वामी को नहीं मानेंगे। भगवान महाप्रभु ने कहा कि वे एक बदचलन औरत है जो अपने स्वामी (पति) की अवहेलना कर रही है। महाप्रभु के इस कथन ने वल्लभ भट्ट को अपमानित किया और उन्हें श्रीधर स्वामी के बारे में और अधिक अपमानजनक राय व्यक्त करने से रोक दिया।

अंत में, महाप्रभु ने अपने शिष्यों को शास्त्र के शब्दों के दायरे में न रहकर उनके भाव में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहित किया। देवानंद पंडित भागवतम पढ़ते समय भक्ति की भावना को नहीं समझ सके, और इसलिए उन्होंने भगवान के भक्तों के साथ व्यवहार के दौरान अपराध किया। लेकिन जब उन्होंने भक्ति के सच्चे भाव को समझ लिया, तब भगवान चैतन्य ने उन्हें गले लगा लिया और जो कुछ उन्होंने पहले किया था उसके लिए उन्हें क्षमा कर दिया।

महाप्रभु द्वारा प्रचारित धर्म सार्वभौमिक और गैर-सांप्रदायिक है। सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे और सबसे ज्यादा अज्ञानी दोनों ही इसे अपनाने के हकदार हैं। विद्वान लोग महान आचार्यों द्वारा छोड़े गए साहित्य का अध्ययन करके इसे स्वीकार कर सकते हैं। केवल भगवान के नाम का जाप करने और शुद्ध वैष्णवों की संगति में शामिल होने से अज्ञानी को समान विशेषाधिकार प्राप्त हो सकता है। संकीर्तन सभी वर्गों के लोगों, जाति या कुल के भेद-भाव के बिना, आत्मा की उच्चतम साधना में संलग्न होने के लिए आमंत्रित करता है। ऐसा प्रतीत होता है की यह संकीर्तन आंदोलन पूरे विश्व में फैल जाएगा, और उन सभी सांप्रदायिक संस्थानों की जगह ले लेगा जो मस्जिद, चर्च या मंदिर के परिसर से अपने संप्रदाय से "बाहर के लोगों" का प्रवेश वर्जित करते हैं।

यदि आप इन पृष्ठों के अध्ययन के बाद, श्री चैतन्यदेव को सर्वोच्च भगवान के रूप में पहचानने के इच्छुक हैं, तो हम आपसे यह विनम्र आग्रह करते है की आप ऐसा बिलकुल भी नहीं सोचे कि भगवान ने पतित पुरुषों की तरह एक भौतिक शरीर में प्रवेश किया है। निचले स्तर के माया-शक्ति से अछूत रहते हुए ही वे अपनी सर्वोच्च शक्ति द्वारा भौतिक जगत में अवतरित हो सकते हैं। इसके विपरीत कुछ और विश्वास करना उनकी वास्तविक स्थिति को कम करना और पाप करने के बराबर होगा।

यदि पाठक उनके चमत्कारों पर विश्वास नहीं करते हैं, तो हमें कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि अकेले चमत्कार कभी भी ईश्वर को नहीं दर्शाते हैं। रावण और उनके जैसे अन्य राक्षसों ने भी चमत्कार किए हैं और यह इस बात को साबित नहीं करते कि वे भगवान थे। असीमित प्रेम और इसका अत्याधिक प्रभाव ही पहचान है जो स्वयं भगवान के अलावा किसी और में नहीं देखा जा सकता।

अंत में, हम यह निर्णय अपने पाठकों पर छोड़ते हैं कि श्री चैतन्य महाप्रभु को कैसे देखा जाए। वैष्णवों ने उन्हें स्वयं सर्वोच्च भगवान कृष्ण के रूप में स्वीकार किया है। दूसरों ने उन्हें भक्त-अवतार (भगवान के प्रेम को बांटने के लिए एक दिव्य अवतार) के रूप में माना है। कुछ वैष्णवों के अनुरोध पर हमने पूजा के समय दैनिक पाठ के

लिए प्रार्थना के रूप में स्मरण-मंगल छंदों की रचना की है। आप में से जो लोग उन्हें इस तरह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं, वे निमाई पंडित को एक महान और धार्मिक शिक्षक के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। हम बस यही चाहते हैं कि पाठक हमारा विश्वास करें।

श्रेष्ठ पाठक! इन पृष्ठों के साथ आप को दखल देने के लिए हमें क्षमा करें। श्री चैतन्यदेव के सेवकों के रूप में, उनकी सर्वोच्च शिक्षाओं का प्रचार करना हमारा कर्तव्य था और एक कर्तव्य का निर्वाह करते हुए, आपको किसी भी परेशानी के लिए, हम क्षमा के अधिकारी हैं। हम बंगाल के मूल निवासी हैं और एक विदेशी (अंग्रेजी) भाषा में अपने शब्दों के प्रयोग में हमने शायद गलतियां की हैं, जिसके लिए आप हमें क्षमा करेंगे।

अंत में, हम यह कहना चाहते हैं कि इन महत्वपूर्ण विषयों पर हमें किसी भी प्रश्न का उत्तर देने में प्रसन्नता होगी, जो हमारे भाई हमसे पूछना चाहते हैं। आध्यात्मिक प्रेम के पथ को तलाशने में हमें अपने मित्रों की मदद करने में बहुत दिलचस्पी है।